

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180587

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.

#83
R91S.

Accession No.

H12533.

Author

रुद्र, कादिकेल, /

Title

सुनिता 11 / 1957

This book should be returned on or before the date
last marked below.

सु-चि-ता-च



‘रुद्र’ काशिकेश

एक मात्र वितरक
कल्याण दास एण्ड ब्रदर्स
ज्ञानवापी, वाराणसी ।

प्रकाशक
आराधना प्रकाशन
६४।४४ गोलादीनानाथ, वाराणसी
मूल्य पाँच रुपये
प्रथम संस्करण नवम्बर १९५७

मुद्रक—
रामनिधि त्रिपाठी,
मायापति प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी ।

जीवन-संगिनी को

सुचिताच

सुमित्रा

- १—शमा-परवाना
- २—हृदयराम और रूपचन्द
- ३—कली और कौटा
- ४—पाँचवाँ मुर्गा
- ५—सत्य और स्वप्न

चित्रा

- १—दिल-ए-नादां तुमे हुआ क्या है
- २—न किसी के दिल का करार हूँ
- ३—नाजवाले नियाज क्या जानें
- ४—बैठ जाता हूँ जहाँ छाँव घनी होती है
- ५—बुलबुल के आँसुओं में है खुशबू गुलाब की

तारा

- १—यदि सा वनिता हृदये निहिता
- २—शशिना सह याति कौमुदी
- ३—तडिद्वा तारा वा कनकलतिका वा किमबला
- ४—संसार-नाटक-रसोत्तम-रत्न-पात्रीम्
- ४—एको रसः करुण एव

चन्द्रा

- १—मोरी बुध लड़कइयाँ मैं का जानूँ राम
 - २—जौ तूँ जइहो राजा पुरुब के देसवाँ
 - ३—रेलिया सवतिया पिया को लिये जाय
 - ४—जवने रे मँगिया में नल्ले सेंधुरवा
 - ५—धनि रे सेंधुरवा कऽ भाग
-

मेरा निवेदन है

कि आदमी बहुत पुराना है और दुनियां उससे भी अधिक पुरानी। फलतः मौलिकता किसी वस्तु में नहीं, उस वस्तु को उपस्थित करने के ढंग में ही प्रदर्शित की जा सकती है। प्रस्तुत रचना के आलोचक कृपया इस तथ्य की उपेक्षा न करें।

कि मेरी पिछली कृति बहती गङ्गा के सम्बन्ध में आलोचकों में बड़ा मतभेद दिखायी पड़ा। किसी ने उसे उ पन्यास कहा, किसी ने कहानी संग्रह। मैंने न बहती गङ्गा के सम्बन्ध में अपना अभिमत प्रकट किया था, न 'सुचिताच' के सम्बन्ध में करता हूँ। यह क्या है, इस पर निर्णयात्मक वक्तव्य देने का अधिकार मेरे पाठकों और मेरे आलोचकों को है। मैं तो केवल इतना ही कह सकता हूँ कि—मैं चित्र का कायल हूँ, चौखटे का नहीं।

कि कल्पना का पक्षी कितनी ही ऊँचाई तक क्यों न उड़जाय, उसे उड़ान भरने के लिए वास्तविकता की ठोस भूमि पर पैर टिकाना ही पड़ेगा। जहाँ चरण पड़ेंगे, वहाँ उसके चिह्न भी रह जायेंगे। 'सुचिताच' में भी कहीं-कहीं ऐसे चरण चिह्न दिखायी पड़ जा सकते हैं। अतः यह कहने तक कोई आपत्ति नहीं कि ये चिह्न तो मेरे चरण चिह्नों से मिलते-जुलते हैं, परन्तु इससे आगे बढ़ना रास्ता भूलकर बहक जाना मात्र होगा।

कि इस रचना में तीन अध्याय ऐसे मिलेंगे जिनका मूल रचना से कोई सम्बन्ध दिखायी न देगा, परन्तु रचना के मूल भाव से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तविकता की रक्षा तो उनसे हुई ही है।

कि यथार्थता का रङ्ग चढ़ाने के लिए मैंने कहीं-कहीं वास्तविक व्यक्तियों के नामों का उपयोग कर लिया है। यदि उन्हें यह मेरी अनधिकार चेष्टा, मेरी धृष्टता जान पड़े तो वे उसे उदारता पूर्वक क्षमा कर दें। बस—

शरद पूर्णिमा, २०१४
वाराणसी

—‘रुद्र’ काशिकेय

सुचिताच

- १ सुमित्रा—सोचती थी कि नित्य नयी गाड़ी और साड़ी प्राप्त करने के साधन का नाम प्रेम है।
- २ चित्रा—की दृष्टि में प्रेम का अर्थ मनोरंजन मात्र था।
- ३ तारा—की धारणा थी कि प्रेम मन के एक विकार का नाम है।
- ४ चन्द्रा—ने अपनी सहज बुद्धि से यहाँ जाना कि प्रेम का अर्थ प्राण त्याग तक है।
- ५ गुलबदन ने—सिद्ध ही कर दिया कि आजीवन विरह-साधना का नाम प्रेम है।
- ६ जोहरा ने—जाहिर किया कि किसी भी स्थिति में प्रेमास्पद को न भूलना ही प्रेम है।
- ७ मुन्ने की बहू के—आचरण ने प्रमाणित कर दिया कि प्रेम शुद्ध उन्माद है।
- ८ सुधीरा का—ख्याल था कि सन्तानोपत्ति किये जाना ही प्रेम है।
- ९ मानियाँ घोबिन—यह मानती थी कि प्रिय द्वारा निरन्तर प्रहार ही उसके प्रेम का लक्षण है।
- १० सावित्री की माँ ने—उसके मन में बैठा दिया था कि विवाह ही प्रेम है।
- ११ नन्दिता का—अनुभव था कि घृणा ही प्रेम है।
- १२ रानी तारावली ने दिखा दिया कि प्रिय की हत्या कर देना भी उसके प्रति प्रेम का ही परिचायक है।

- १३ लाल बाई—धर्म परिवर्तन में प्रेम की पराकाष्ठा देखती थी ।
 १४ बुधिया—कै शव ने प्रकट किया कि मर कर भी प्रिय चरणों में पड़ा रहना ही प्रेम है ।
 १५ प्रोफेसर पूर्णचन्द्र—कासिलान्त था कि मरण-काल में राम की जगह रामा का स्मरण करना प्रेम की पराकाष्ठा है ।
 १६ सेठ कान्तिलाल—मानते थे कि प्रेम 'कमर्शल बिजिनेस' है ।
 १७ मिस्टर जोनाथन—समझते थे कि प्रेम 'फ्रिवोलिटी' है ।
 १८ सेठ हृदयराम को—विश्वास था कि प्रेम हृदय की वस्तु है ।
 १९ लाला रूपचन्द—समझते थे कि प्रेम खरीदा जा सकता है ।
 २० सुमन्त ने—अन्त में मान लिया कि प्रेम जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है ।
-

१

सुमित्रा

शमा-परवाना

‘ऊपर छत से—

फानूस में लटकती हुई शमा ने
मचल कर परवानों से कहा—दूर ही
रहना । जली बैठी हूँ तुम्हें भी जला
दूँगी ।

परवानों का समूह मस्ती से
आगे बढ़ा । उसने भी ललकारा—
क्या जलने का मजा अकेले ही होगी ?
हमारे कलेजे में भी एक नन्हीं सी
चिनगारी है । हम भी पीछे न रहेंगे ।

शमा एकबार जोर से लहको । बहके हुए परवानों का समूह समीप आ चुका था । सभी के पंख जल गये । सभी झुलस कर भूमि पर आ रहे ।

नीचे भूमि पर—

ईरान के कवि-मन-मोहक नगर शीराजकी एक सुप्रसिद्ध सराय के महलों जैसे सजे एक कक्ष में भी एक परवाना नारी के रूप में विशाल दर्पण के सामने अपने शृङ्गार-प्रसाधन में व्यस्त था । नारी अपने जीवन के साठ वसन्त बिता चुकी थी । उसके शरीर पर रेशमी ओढ़नी शव के ऊपर पड़े हुए कफन की तरह मूल रही थी । उसके श्वेत केश मस्तक पर हिम किरोट के समान प्रकाश में चमक रहे थे और रजत-रज्जु-सी दो वेणियां कन्धों पर आगे मूल रही थीं । केश सन हो जाने पर भी स्नेह से सींचे जा रहे थे । आंखों की ज्योति जवाब-सी दे चुकी थी फिर भी उनमें सुरमा भरा जा रहा था । भुर्रीदार कपोलों पर कानों से लटकते हुए मोतियों के दो गुलाबी फूल मूल रहे थे ।

सारा प्रसाधन समाप्त कर वृद्धा ने दर्पण की ओर अपनी टिमटिमाती हुई दृष्टि से देखा । दर्पण एक श्वेत वस्त्र-खंड से समूचा ढका हुआ था । फिर भी वृद्धा उस ओर इस तरह देख रही थी जैसे उसमें उसकी प्रतिच्छाया स्पष्ट दिखाई पड़ रही हो । भुस्कराने के प्रयत्न में अपने दन्त-विहीन मुखमण्डल को और भी विकट बनाती हुई वह अपनी दुग्ध-धवल शय्या पर जा गिरी ।

शीराज के सर्वोत्तम सरायकी स्वामिनी, अतुल सम्मति-शालिनी वृद्धा गुलबदनखानम प्रसाधन कार्य में किसी का विश्वास न करती थी । परन्तु आज का प्रसाधन उसे श्रमसाध्य

सिद्ध हुआ। उसने सूखे कंठ से अपनी दासी को पुकारा—
शबनम !

षोडश वर्षीया सुन्दरी शबनम स्वामिनी के सामने सादर
स-भय समुपस्थित हुई। गुलबदन ने पूछा—

‘हिन्दोस्तान की ओर से कोई काफिला तो नहीं आया है।’

—‘उधर से तो आज किसी भी काफिले के आने की खबर नहीं’

—अच्छा शीघ्र खिड़कियां खोल दे। जान पड़ता है चमन
में इस साल की बहार भी आ गयी। फूलों की भीनी भीनी खुशबू
खिड़की बन्द रहने पर भी यहां आ रही है। लेकिन शबनम,
मेरा बुल-बुल तो अभी तक वापस नहीं आया।—बृद्धा ने ठंडी
सांस लेते हुए कहा।

शरारती शबनम ओठों में मुस्कराई। गुलबदन खानम के
पागलपन से वह सर्वथा परिचित थी। उसने खिड़कियां खोल
दीं। गुलबदन ने बाहर देखने का अभिनय करते हुए कहा - देख,
मैं कहती थी न कि बहार आ गयी। सारा गुलशन दुल्हन बना
हुआ है।

‘जी हाँ’ इस साल तो बड़े बड़े गुलाब खिले हैं। चांदनी दूध
की तरह बह रही है। अफसोस इस वक्त कोई बुलबुल नहीं।
शबनम ने पतझड़ के मारे सूखे उद्यान पर एक निगाह
डालकर कहा।

‘अच्छा, दिलरुबा उठा ले और सुना दे हाफिज की कोई रुबाई-
बुलबुल की दिलकश आवाज में। जब से मेरा बुलबुल उड़कर
गया तब से मेरे चमन में कोई बुलबुल बोला ही नहीं।’

बात कुछ ऐसे करुण ढंग से कही गयी कि हँसोड़ शबनम
की आंखों में भी करुणा लहर गयी। उसने दिलरुबा उठाया। वाद्य
सेकसक भरी मीढ़ निकली और शबनम के दर्द भरे गले से एक
टीस। वह हाफिज की इस आशय की रुबाई गाने लगी—

तेरी छवि के चिन्तन में प्रिय !
तजी दृष्टि ने पलकावलियां ।
पग न छोड़ वह मग हटते
हैं जिधर भवन की तेरे गलियां ।
दुनियावालों की आंखों ने
निद्रा नामक सुख है पाया
नौद नहीं मेरी आंखों में
हाय ! नयन की दग्ध पुतलियां ॥

गीत के प्रत्येक अक्षर शवनम के रोम-रोम को अनुभूति प्रदान कर रहे थे । फलतः उसकी आंखों से मोती झड़ रहे थे । वृद्धा गुलबदन अपना कलेजा थामकर करवट हो रही । वह सोते सोते जाग रही थी और जागते जागते स्वप्न देख रही थी । वह स्वप्न देख रही थी कि—

भाड़ लटक रहा है । उसमें सैकड़ों शमाएं परियों की तरह नाच रही हैं । मखमली कालीन पर तकियों के सहारे अधलेटे तरुण जौहरी गुलरुख ने अपनी मद-विलासित आंखें साकी गुलबदन की ओर उठायीं । गुलबदन के एक हाथ में कलश और दूसरे में चषक था—मधु से लबालब । गुलरुख को एक टक निहारते देख गुलबदन के नीलोत्पल नेत्र सहज ही नीचे झुक गये और चषक में अपनी छाया देखने लगे । गुलरुख के ताम्र-लोहित लोचन भी साकी की आंखों का अनुसरण करते हुए प्याली की ओर झुके । प्याली में चार मछलियां तैर गयीं—दो नीली नीली, दो लाल लाल ।

—साकी, मैं तुमसे निकाह करूँगा । अपनी जिन्दगी के घड़े को तुम्हारे रूप की मदिरा से भर दूँगा । बोलो मुझे कबूल करोगी ।

साकी के अरुणाभ कपोल और भी लाल हो उठे । सारा सौन्दर्य जैसे सिमटकर कपोल-पाली में भर गया । वह चुप रही । वह सराय के स्वामी इब्न हाशिम की लाड़ली बेटी थी । उसके दुनिया देखे हुए बाप ने न जाने क्यों बांदियों को न भेजकर उसे ही इस तरुण जौहरी की सेवा में साकी के पदपर नियुक्त कर दिया था । गुलरुख के इस प्रस्ताव से गुलबदन को अपने पिता के उद्देश्य का पता चल गया । पल भर में यह सारा विचार उसके मस्तिष्क में घूम गया । गुलरुख बड़े ध्यान से उसके बदन पर उतार चढ़ाव को देख रहा था ! उसने फिर कहा—

‘मुझे कोरा जौहरी न समझो गुल, जौहरी बनकर तो मैं सिर्फ सफर कर रहा हूँ ।’

‘तुम कौन हो’—भयभीत होकर गुलबदन ने पूछा ।

‘कम से कम चोर तो नहीं हूँ’—गुलरुख ने कहा ।

गुलबदन का आतंक मिट गया । इन शब्दों में उसे परिहास की गन्ध आयी । उसने कहा—

‘सूरत से तो चोर ही जान पड़ते हो । अच्छा बता दो तुम कौन हो ।’

‘तुम्हारा गुलाम ।’

गुलबदन लजा गयी । गुलरुख उसे एकटक देख रहा था । उसने फिर कहा—

‘घाटे में नहीं रहोगी गुल । एक तख्त और ताज में तुम्हारा हिस्सा होगा । मैं जौहरी नहीं शाहजादा हूँ ।’

‘तुम बादशाह हो । मेरी जान के बादशाह हो, मेरी दीन दुनिया के बादशाह हो मेरे दिल के बादशाह हो यह कहो तो मान लूँ ।’—गुलबदन ने अविश्वास की मुस्कराहट से लजाते

गुलरुख बोला—नहीं गुल, सच कहता हूँ। बोलो निकाह मञ्जूर है।

—कह तो दिया।

—तो देर क्यों ?

गुलरुख और गुलबदन निकल पड़े। मधु-शर्वरी का आँचल अपनी सहस्रों किरणों से खींच मींच कर वासन्ती विधु आकाश से मंदिर आलोक उलीच रहा था। दोनों ओर क्यारियों में बड़े-बड़े राते गुलाब मधु समीर की मृदु मन्द थपकियाँ खा-खा कर धीरे-धीरे सिर हिला रहे थे। आँखों से परे बहुत दूरपर एक बुलबुल चीख-चीख कर विकल वेदना बहा रहा था। सामने मसजिद की शुभ्र धवल मीनारें दिखायी पड़ीं। दोनों भीतर गये।

मसजिद में कल कोलाहल हो रहा था। गुलबदन का पिता अपने कुटुम्बियों के साथ वहाँ उपस्थित था। सुफेद लम्बी दाढीवाले एक मुल्ला भी गम्भीरता पूर्वक बैठे तसबीह हिला रहे थे। बीच-बीच में वह मनका घुमाना रोक कर अपनी दाढीपर हाथ फेर लेते थे। गुलरुख और गुलबदन को एक साथ—एक को हर्षोत्फुल्ल और दूसरी को लज्जारुण—आते देख समवेत मण्डली ने अपनी उपस्थिति सार्थक समझी। विधिवत् विवाह हुआ। उसी प्रभात को गुलरुख अपने काफिले के साथ भारत की ओर रवाना हुआ। जाते समय उसने वादा किया—

‘शीघ्र ही लौटूँगा गुल और फिर तुम्हें मलका बनाकर ले चलूँगा।’ इमाम जामिन को सौंपने की बात कहते-कहते गुलबदन का गला भर आया। वह फफक फफक कर रो उठी।

उसके बिसूरने की आवाज बाहर शबनम के कानों तक पहुँची। स्वामिनी को सोते देख शबनम दिलरुबा रखकर बाहर

निकल गयी थी। अब स्वामिनी के रोने की ध्वनि सुनकर वह दौड़ी आयी। उसने देखा कि गुलबदन नींद में ही रो रही है। शबनम की भी आँखें भर आयीं। वह जानती थी कि उसकी स्वामिनी के स्वामी विवाह के दूसरे ही दिन अपनी पत्नी को अतुल द्रव्य देकर जो भारत को ओर रवाना हुए तो अब तक लौटकर न आये। इधर उसकी स्वामिनी चालीस बरसों से अपने पति की प्रतीक्षा में चौबीस घण्टे शमा की तरह जलती हुई काफिले गिनती रही है।

शबनम को यह विदित था कि गुलबदन को स्वामी के लौटने तक अपना यौवन और सौन्दर्य स्थिर रखने की धुन सवार हो गयी थी। वह चौबीस घण्टे दर्पण के सामने खड़ी रहने लग गयी थी। उसकी यह धुन जब पागलपन की सीमा तक पहुँच गयी तब उसके शुभचिन्तकों ने उसके और दर्पण के बीच जंगले खड़े कर दिये। साथ ही दर्पण पर अत्यन्त स्वच्छ शुभ्र व खंड भी लटका दिया। पगली उस वस्त्र खंड में ही अपनी प्रतिच्छाया की कल्पना करने लग गयी।

यह सब जानते बूझते रहने के कारण शबनम को अपनी स्वामिनी से सच्ची सहानुभूति हो आयी थी। उसने धीरे से उसे जगाकर उसका हाल पूछा। उसने बताया—

“कलेजा बड़ा जा रहा है। देख कोई काफिला तो नहीं आया ?”

“कोई काफिला नहीं आया है।”—हलके औद्धत्य का स्वर अनजाने ही उसकी बोली में गूँज गया।

“अब मैं न बचूंगी ! कब तक राह देखूँ ?—सहसा सारी आशा छोड़ते हुए गुलबदन बोली।

“इतना घबराती क्यों हैं ?”—गुलबदन की मायूसी से घबराकर शबनम ने कहा ।

“खिड़की बन्द कर दे । आज इतने दिनों बाद बुलबुल भी चीखने लगा है ।”—गुलबदन ने गहरी विरक्ति के स्वर में कहा । शबनम को बुलबुल की चीख तनिक भी सुनाई न पड़ी । फिर भी उसने खिड़कियाँ बन्द कर दीं । सहसा बाहर कोलाहल सुनायी पड़ा । ऊँटों के बलबलाने की आवाज और नगाड़ों की धमक भी सुन पड़ी । सराय का बड़ा फाटक खुलने की भी आहट लगी ।

“शायद कोई काफिला आ गया ।”—गुलबदन ने पुनः आशान्वित होकर कहा । शबनम जवाब भी न दे पायी थी कि द्वारा पर किसी ने पुकारा—

“गुल, क्या मैं भीतर आ सकता हूँ ।”

गुलबदन का मानस अनन्त स्मृतियों की अखंड लहरों से आन्दोलित हो रहा था । यह स्वर कान में पड़ते ही वह चौंक पड़ी और उठ बैठी । पुनः आवाज आयी—

“गुल, मैं आ रहा हूँ ।”

और साथ ही पैसठ वर्ष का एक अत्यन्त कृशकाय मनुष्य दोहरी कमर लिये, लाठी टेकता सामने आ खड़ा हुआ । उसे देखते ही गुलबदन खड़ी हो गई । आँखें मिचमिचाकर बुढ़े को क्षणभर ध्यान से देखा और फिर तड़पकर पूछा—

“तुम कौन हो ?”

“मुझे नहीं पहचाना गुल ? मैं हूँ तुम्हारा गुलरुख ।” - बूढ़े

ने लाठी के सहारे तनिक तन जाने और गुलबदन से आँखें मिलाने का प्रयत्न करते हुए कहा ।

“आवाज से कुछ शक हुआ था, लेकिन तुम मूठे हो । गुल-रुख ? मेरा बादशाह, क्या कभी तुम्हारे जैसा था ? वह तो गभरू जवान है । यूसुफ सा खूबसूरत ! उसकी आँखें—”

उसकी बात काटकर बूढ़े ने कहना आरम्भ किया—“गुल, यहाँ से जानेपर मैं हिन्दोस्तान के सरहद्दी कबीलियों के पंजे में पड़ गया था । सारी जिन्दगी उनके यहाँ गुलाम बनकर कैद रहा । मौका पाया तो एक काफिले के साथ भागा चला आ रहा हूँ । कैद की मुसीबतों ने मेरी यह हालत कर दी है । लेकिन गुल, तुम भी तो बदल गयी हो ।

“कौन कहता है मैं बदल गयी हूँ ? जरा आईना तो देखो ।” कंठ स्वर में नया बल धोलती हुई गुलबदन बोली ।

“आईने पर तो तुमने परदा डाल रखा है । अच्छा देखो ।”

बूढ़ा गुलरुख जंगला खोलकर भीतर गया । उसने एक झटके से दर्पण पर टंगा हुआ परदा नोच लिया । उसके पीछे-पीछे गुलबदन भी दर्पण के समीप गयी । मिनट भर आँखें फाड़-फाड़ कर उसमें देखती रही और फिर एक चीख मारकर भूमि पर लोट गयी ।

बाहर उद्यान में चालीस वर्ष बाद एक बुल-बुल कहीं से उड़कर पुनः आ गया था । समूचे चमन में सिर्फ एक ही गुलाब खिला हुआ था । वह उसपर बैठ गया । उभरा हुआ कांटा उसके सीने में धंसा । उसके कंठ से हृदयविदारक चीख फूटी और उद्यान में गूँजकर अन्तरिक्ष में विल न हो गयी । लाल गुलाब बुल-बुल के हृदय रक्त से और भी लाल हो उठा ।

गुलरुख ने वह चीख सुनी । उसने भी अनुभव किया कि मैं भी तो एक बुल-बुल ही हूँ—बूढ़ा बुलबुल । बुलबुल ही की तरह उसने भी चीख मारी और गिरी हुई गुलबदन पर खुद भी गिर पड़ा ।’

हृदयराम और रूपचन्द

रेलिंग के उस पार लान में—

कहानी समाप्त हो गयी । कागज लपेटकर जेब में रखते हुए सुमन्त मुस्कराया, सुमित्रा विह्वल प्रशंसा के भाव से उसकी ओर निहार रही थी । उसकी मूकता जैसे चिल्लाकर पूछ रही थी—यह कहानी तुमने लिखी है ।

रेलिंग के इस पार सड़क पर—

टीन की बनी हुई अपनी अपनी दूकानों पर अगल बगल बैठे सेठ हृदयराम और लाला रूपचन्द ने फाटका खेल डाला । दोनों के मुँह पर विजय का विश्वास था, दोनों की आंखों में पराजय का त्रास था ।

सुमित्रा की विह्वलता का कारण यह अनुभूति कि यदि परवाना जलता है तो शमा भी उससे पहले ही जल उठती है। कवि का कथन कितना सच है—

जरा देख परवाने करवट बदलकर ।

सती हो गई शमअ महफिल में जलकर ॥

सेठ हृदयराम और लाला रूपचन्द के फाटके का विषय यह कि सुनहला रूप बलवान है अथवा रुपहला रुपया। वे प्रायः सालभर से देखते आ रहे थे कि यह सर्वाङ्ग सुन्दर तरुण प्रतिदिन नियमपूर्वक राजा साहब की कोठी में आता है। राजासाहब की पुत्री से खूब पटती है। तरुण का रङ्ग कच्चे सोने सा है और हृदय तो जैसे हीरा है हीरा। पटरी पर पड़े मरीज भिखारियों को अपने कन्धे पर उठाकर अस्पताल पहुँचाते उसे उन दोनों ने कई बार देखा है। अब गत सप्ताह से वे बराबर देख रहे हैं कि नित्य ही जब सुमन्त अपने थके हुए चरणदास की जोड़ी पर लड़खड़ाता हुआ चला जाता है त्योंही दस बीस मिनट बाद कोठी के पोर्टिको में एक निहायत नफीस मोटर कार आकर खड़ी हो जाती है। शोफर की बगल में बैठा हुआ वर्दीधारी सिपाही उतर कर दर्वाजा खोलता है और कार में से एक महार्घ वसन समन्वित विशाल थुल-थुल काया बाहर निकल पड़ती है। उसके स्वागताथ बरामदे को सीढ़ी उतरकर केवल सुमित्रा ही नहीं, सुमित्रा के पिता राजाबहादुर रतनाकर सेन और उसकी माता रानी रत्नमयी दासी भी पल पल बलैयां लेते हुए नीचे उतर आते थे। और तब उनके ड्राइंग रूम से हारमोनियम पर सुमित्रा की कंठ लहरी लहरा उठती थी.....

परदेसी बँधू घूम भाँगायो चूमि आंखि ।
जदिगो निशीथ जेगो घूमाइया थाकि—
आमि, घूम माँगायो चूमि आंखि ॥

[पलक चूमकर मुझे जगाना परदेसी प्रिय ।
अर्द्ध रात्रितक जाग जाग यदि मैं सो जाऊं
पलक चूमकर मुझे जगाना परदेसी प्रिय ।]

हृदयराम और रूपचन्द यह भी देखते थे कि जब सुमन्त कोठी से निकलकर जाता था तो दरबान हंसने लगते थे । जब यह मोटर आती थी तब वे बाअदब बाकायदा खड़े हो जाते थे ।

सेठ हृदयराम और लाला रूपचन्द दोनों ही पुराने लोग । जमाना देखा हुआ । अतः जानते थे कि राजाबहादुर दशमौलि रावणेश्वरप्रसाद नारायण सिंह और विश्वविद्यालय का अज्ञात कुल श्रील छात्र सुमन्त दोनों ही एक ही देवी के प्रसाद की आशा में नित्य इस मन्दिर की प्रदक्षिणा करते और उसकी चौखट पर माथा टेकते हैं ।

सुमन्त बरसों से आता है अतः सेठ हृदयराम समझते हैं कि ज्यों-ज्यों भीजै कामरी त्यों-त्यों भारी होय । प्रीति जितनी ही पुरानी होकर पकती है उतनी ही देर में वह थकती है । अतः बाजी सुमन्त हो मारेगा कारण एक तो तरुण और फिर अरुण । चेहरे पर भोलेपन का वह भाव कि देखनेवालों की आँखों में वरुण लहरा उठे । उन्होंने विश्वास का रङ्ग उभार कर कहा— लालाजी, अपने को तो रामजी की इच्छा से विस्वास है कि बिजै हिरदय की ही होगी ।

लाला रूपचन्द बिहारी राजा का जो स्वागत सम्भार और स्वयं उसके वैभव का जो प्रसार देखते हैं तो मान लेते हैं कि

ऐसा कौन है जो धन के घाट पर उतर कर पानी-पानी न हो जाय । उन्होंने वैभव को कभी किसी भी भाव से पराभव प्राप्त करते न देखा था अतः ठसक का ढङ्ग दबाकर जवाब दिया—सेठ जी, पैसे की आँच पत्थर को भी पिघला देती है । हाड़ माँस के पुतले आदमी की तो बात ही क्या । आज तक रुपया कहीं नहीं हारा । देख लीजियेगा यहाँ भी न हारेगा ।

इस हार जीत का निर्णय करने के लिए आपस में हार जीत की बाजी लग गयी । यदि सुमन्त की विजय हो तो सेठ हृदयराम की तिजोरी में तत्काल दो सौ रुपयों की वृद्धि हो जाय और यदि राजा दशमौलिरावणेश्वरप्रसाद नारायणसिंह की गैँडे जैसी गरारेदार गर्दन में सुमित्रा वरमाल डाल दे तो लाला रूपचन्द की चाँदी की चौकी जरा और भारी होकर कुछ और चमक उठे ।

रेलिंग के इस पार कोठी की लान में कुरसी पर आसीन सुमित्रा ने सामने बैठे सुमन्त से पूछ ही दिया—सचमुच यह कहानी तुमने लिखी है ।

सुमन्त ने भोलेपन के साथ मुसकराते हुए उत्तर दिया—इसमें इतने आश्चर्य की क्या बात है । मनुष्य ही कहानी लिखता है और मैं भी मनुष्य ही हूँ ।

—ओ, मैं यह नहीं पूछती । मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम्हें यह लिखने की अनुभूति कहाँ से प्राप्त हुई कि परवाने के जलने से पहने ही शमा जल उठती है ।

—जी, मुझे इस भाव की अनुभूति इस अनुभव के महत्व से प्राप्त हुई कि परवाना शमा को जलती देख नहीं सकता अतः खुद जल जाता है ।

—आपने यह कहानी मुझे क्यों सुनाई है । सुमित्रा ने सिर झुकाये हुए पूछा ।

—तुम्हें अपनी रचनाएँ सुनाता आ रहा हूँ ।

सुमित्रा पुनः चुप हो गयी । उसने फिर सिर झुका लिया । सहसा उसने झटके के साथ सिर ऊपर उठाया और खटके के साथ प्रश्न किया—आज ही न तुम वह पियाजी साड़ी लानेवाले थे । उसकी जगह यह कहानी लाये हो क्यों ?

सुमन्त चुप रहा ।

—सुनार के जवाब की जगह आज भी यह कहानी ही है । शमा की एकनिष्ठा का वृत्तान्त सुनाकर यदि मुझे भुलवाना चाहते हो तो यह तुम्हारी भूल है ।

सुमन्त के अधरोष्ठ कांपे और उसपर प्रवाहित होनेवाली सहज स्मिति की क्षीण धारा उसी प्रकार सहसा विलुप्त हो गयी जैसे भूमि कांपकर एक बार फट जाय और पयस्विनीका पतला प्रवाह उसमें सदा के लिए विलीन हो जाय ।

उसने बड़े ध्यान से सुमित्रा के बर्फ जैसे सफेद चिकने और ठंडे बदन पर अनेक भावों को स्केटिंग करते देखा । कोई भाव मचल-मचल कर आगे बढ़ा जा रहा था, कोई फिसला पड़ता था और कोई लुढ़कनियाँ खा रहा था । वह बुदबुदाया-शमशेर हर रंग में जलती है सहर होनेतक ।

दूकान पर बैठे-बैठे सेठ हृदय राम मनचन्दानी का मनः अज्ञात आशंका से भर उठा । सिन्ध का भगड़ा पाक हो जाने पर आसमान की हवा खाते-खाते सेठ मनचन्दानी जब खाक में मिल गये तो भारत आये । अन्य सहायताओं के साथ सरकार ने भी ऋण दिया । सेठ सहृदय थे । अतः दूसरों में भी आसानी से सहृदयता का संचार कर देते थे । फलतः व्यापार चमका । सारा ऋण चुक गया । केवल दौ सौ बाकी है । वे भी तैयार ही हैं । जब मांग होगी हाजिर कर दिये जायेंगे । मगर कहीं

फाटके में ये रुपये निकल गये तो । ज़ण भर के लिए सेठ हृदय राम की मुख-कान्ति फीकी पड़ गयी । हृदय ने संभाला । अधरोष्ठ पर मधुर मलिन मुसकान की रेखा खिंच गयी ।

सुमन्त के चेहरे पर हवाई उड़ते देख सुमित्रा अर्थ पूर्ण ढंग से मुस्करायी ।

लाला रूपचन्द का अन्तस अकारण ही पुलकित हो उठा । ऐसे ह। पुलक का अनुभव उन्हें उस दिन भी हुआ था जिस दिन रक्त सरिता में तैरकर, मुरदों की सीढियों पर चढ़ उतर कर, गोलियों की बौछारों में भीगने से बाल-बाल बचकर और तलवारों भालों और खंजरों की बिजलियाँ चमकती रहने पर भी निराशा के अन्धकार में छिपे-छिपे उन्होंने भारत की सीमा में पैर रखा था । हृदयराम के मुख पर मलिन मुसकान देखकर वे भी अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कराये ।

अपनी मुस्कराहट से सुमन्त का चेहरा उसी प्रकार मलिन होते देख जैसे बिजली की मार से तरुण तरु जलकर काला पड़ जाता है, सुमित्रा ने उस पर सान्त्वना के छींटे देने का प्रयत्न किया । नाजुक कलाई की चूड़ियों में जड़ी छोटी सी खुशनुमा घड़ीपर निगाह डालते हुए उसने कहा—खैर कोई बात नहीं । आज सुनार नहीं मिला नहीं सही । शायद तुम्हारी तबीयत भी ठीक नहीं है । मेरी तो नहीं ही है ।

—ऐं आपकी तबीयत ठीक नहीं है ? आपने मुझसे पहले ही क्यों न कहा ! क्या शिकायत है ? सुमन्त ने पूछा ।

—शिकायत यही है कि कोई शिकायत नहीं । भूख लगती है खा लेती हूँ । नींद लगती है सो रहती हूँ । परन्तु एक बेचैनी सी दिल में बराबर बनी रहती है । जान पड़ता है जैसे मुझे किसी चीज की आवश्यकता है परन्तु यह समझ में नहीं आता

कि किस चीज की । जान पड़ता है जैसे मेरा कुछ खो गया है । क्या खो गया है यह नहीं मालूम ।

सुमित्रा ने उस लापरवाही के साथ उत्तर दिया जो तरुणी सौन्दर्य की सहज संगिनी होती है । जिस वक्त सुमित्रा बेकार बहानेबाजी में लगी हुई थी उसी समय सुमन्त का मन गुनगुना रहा था.....

हम तौरे इश्क से तो वाकिफ नहीं हैं लेकिन
सीने में जैसे दिल को कोई मला करे है ।

त्योही सुमित्रा ने बहानेबाजी की दीवार पर झूठ का पलस्तर चढ़ाया । बोली-देखते हो कैसी जबरदस्त आंधी आ रही है । तुम्हें दूर जाना है, ठंडे-ठंडे निकल जाओ ।

सुमन्त ने आकाश की ओर आंखें उठाई । शायद उसकी आंखों में ही गर्द पड़ गयी थी इसीलिए उसे आकाश बिलकुल साफ दिखाई पड़ा । हवा के झोंके कुछ तेज जरूर थे मगर वे भी सुहावने प्रतीत होते थे । अतः उत्साह-हीन भाव से अपना भोला उठाते हुए उसने धीरे से कहा—सुमी, आज तो चित्रलेखा देखने का प्रोग्राम था न । इसीलिए मैं पुरातत्व प्रचारिणी समिति के विशेष अधिवेशन में नहीं गया । वहां आज डाक्टर आल्टेकर का बड़ा ही महत्वपूर्ण भाषण होनेवाला था । देश में हुई नयी खोदा-इयों पर वे विस्तार से प्रकाश डालनेवाले थे ।

सुमन्त के शब्दों से मायूसी टपकी पड़ती थी । पार्श्ववर्ती बद्यान में आयोजित कवि सम्मेलन में योग देने के लिए जाने वाली एक कवि-मंडली में न जाने क्या बात हुई कि एक कवि जी ठठाकर हंस पड़े और उन्होंने इस प्रकार तान लड़ायी जैसे वे सड़कपर न होकर अपने गुसलखाने में हों । सुमन्त उनकी तान

सुनकर चौंका जैसे उसके मन के छिपे हुए भाव को कवि ने बल-पूर्वक प्रकट कर दिया हो। वह भौंचक्का हो रहा। कविजी की तान हवा में लहरा रही थी।

न खुदा ही मिला न विसाले सनम
न इधर के रहे न उधर के हुए।

जैसे प्रयत्नपूर्वक छिपाये हुए फोड़े पर कोई बालक अनजान में घूंसा मार दे और जिसे फोड़ा हुआ है वह गहरी पीड़ा अनुभव करने के बावजूद केवल अपनी आकृति विकृत-कर चुप रह जाय, कुछ-कुछ वैसी ही दशा सुमन्त की हुई। कविजी का तराना उसे अपनी आहत स्थिति पर नमक मिर्च का लेप जान पड़ा। वह सचमुच सोच रहा था कि यदि पहले से मालूम होता कि सुमित्रा ऐन मौके पर कत्री काट जायगी तो वह अपने को उक्त विद्वान का भाषण सुनने से कदापि वंचित न रखता। इसी सिनेमा के लिए पैसा बचाने में वह सुनार को आखिरी किश्त न दे पाया था और इसी लिए आज वह सुनार के पास न जाकर सीधे यहां चला आया था। वह परेशान हो उठा।

उसकी परेशानी पर सुमित्रा यों खिलखिला कर हंस पड़ी जैसे भूमि के सिर पर बहती आंधी के ऊपर आकाश चांदनी की बौछार कर दे।

ऊपर बरामदे में तन्वी सुमित्रा की स्थूलांगिनी जननी रानी रत्नमयी दासी अपनी पुत्री की खिलखिलाहट सुनकर बुनाई और जेवरों की जंचाई में व्यस्त रहने के बावजूद चौंक पड़ी। बल्लाहसेनी व्यवस्था के अन्तर्गत जिन ब्राह्मणों और कायस्थों को कुलीनत्व प्राप्त हुआ था उन्हीं में एक के वंशधर राजा रत्नाकर सेन थे। अब उनके पास धनिकता तो न रह गयी थी पर उसकी धमक अब भी बाकी थी। गरमी समाप्त हो गयी थी। केवल

ऊमस की गमक शेष थी। यह दीपक की वह लौ थी जिसमें ज्वलनशक्ति की हीड़ जल उठती है। फलतः रानी रत्नमयी अब प्रतिमास नये आभूषण नहीं बनवातीं। सुनार उनके पुराने आभूषणों को नया रूप दिया करता है। सुनार को सामने बैठाकर रानी जी जिस समय नेकलेस को चेन और चेन को इयररिङ्ग का रूप दिलवा रही थीं कि पुत्री की खिल खेलाहट ने उन्हें चौंका दिया।

उसी समय उनके पति राजा रतनाकर सेन भी अपने सामने से अखवार हटाकर इधर-उधर देखने लगे। यह आविष्कार कर लेने पर कि यह कल-कल नादिनी हास्य-सरिता उनकी पुत्री के ही कण्ठ-कुण्ड से फूटी है उन्होंने एक अँगड़ाई ली और पत्नी की ओर देखकर कहा—राजा रावणेश्वर के भी आने का समय हो चला। वे सुमन्त को यहाँ देखेंगे तो न जाने क्या सोचेंगे।

रानी रत्नमयी ने सूत की पिण्डी और शलाकाएँ सम्हालकर मेजपर रख दीं और सहज गज-गति से झूमती हुई चलकर अपनी पुत्री के पास पहुँची।

सुमन्त के चेहरे पर अब भी हवाई उड़ रही थी, सुमित्रा के कण्ठ से अब भी खिलखिलाहट की फुलभङ्गी बूट रही थी।

पहले सुमन्त ने रानी को देखा। उसने संयत होकर उन्हें प्रणाम किया। सुमित्रा ने भी अपनी माता को देखा परन्तु उसने संयत होने की कोई आवश्यकता न समझी।

रानी रत्नमयी ने बड़े ही वात्सल्यपूर्ण स्वर में सुमन्त से पूछा—कहो बेटा मजेमें हो न। मेरी किताब अब कितनी बाकी है।

गत वर्ष रानी रत्नमयी और राजा रतनाकरसेन यूरोप की यात्रा पर गये थे। लन्दन, पेरिस, मैड्रिड आदि यूरोपीय राजधा-

नियों का चंक्रमण करने के बाद वे अन्त में रोम गये और वहाँ से मध्यपूर्व होते हुए स्वदेश लौट आये। अपनी इसी यात्रापर रानी जी पुस्तक लिख या लिखवा रही थीं। उनके मौखिक नोट्स के आधार पर सुमन्त उनकी पुस्तक लिख रहा था। उसी ने पुस्तक का नामकरण भी किया था 'रमना से रोमतक।' यह नाम रानी रत्नमयी को बहुत पसन्द भी आया कारण उनके इस उद्यान-आवास का नाम ही था रमना।

सुमन्त ने सविनय उत्तर दिया—हाँ माता जी, अब दो ही अध्याय शेष रह गये हैं 'काहरा का कहर' और 'मातृ-भूमि का पुनर्दर्शन !'

रानी जी ने अनुकम्पापूर्ण हँसी हँसकर कहा—हाँ देखो, रोम के संग्रहालय के प्रसङ्ग में यह लिखना कदापि न भूलना कि मैं वहाँ नग्न पाषाण-प्रतिमाओं को देखकर इतनी लज्जित हुई कि आधी गैलरी से हो लौट आई। यद्यपि यूरोपीय रमणियाँ ऐसी मूर्तियों को बड़ी बारीकी से देख और उनकी बनावट पर बहस कर रही थीं। बस इतना लिख देने से यूरोपीय और भारतीय नारी-चरित्र का भेद स्पष्ट हो जायगा।

'सो तो है ही, सो तो है ही'—सुमन्त ने जल्दी-जल्दी कहा।

रानी रत्नमयी ने फटकार को कटुता को स्नेह की चाशानी में पागकर कहा—परन्तु जब तुम इस प्रकार समय नष्ट करोगे तब तो मेरी किताब पूरी हो चुकी। मौसिम कैसा सुहावना है। इस समय तुम्हें घर बैठकर मेरी किताब पूरी कर देनी चाहिये।

सुमन्त जवाब में कुछ भी न कह पाया था कि रानी ने अपनी पुत्री से कहा—बेबी, तेरे पापा तुम्हें बुला रहे हैं।

बीस साल की बी० ए० पास बेबी ने माता का अभिप्राय पूरी

तौर पर समझ लिया। वह हरिणों की भांति कुलांचें भरती हुई वहां से चली गयी। रानी साहिबा ने सुमन्त पर पुनः कृपा की। कहा—समय नष्ट न करो बेटा। घर जाकर कम से कम एक अध्याय तो आज लिख ही डालो।

प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में एम० ए० की डिग्री प्राप्त सुमन्त को भी रानीजी का अभिप्राय समझते विलम्ब न लगा। उसने खेदपूर्ण ढंग से हंसते हुए कहा—आप न घबराइये मैं आज ही दोनों अध्याय अर्थात् अन्तिम अध्याय भी समाप्त कर दूंगा। नमस्ते।

अन्तिम अध्याय पर अनावश्यक जोर देते हुए उसने पुनः झटके से अपना झोला उठाया और चल पड़ा। रानी ने कहा—जीते रहो। तो मैं आशा करूं कि मेरी पुस्तक मुझे कल मिल जायगी।

सुमन्त ने बिना सिर घुमाये ही उत्तर दिया—अवश्य, अवश्य।

फाटक पर बैठा दर्बान उसे देख शरारत से मुस्कराया और अपनी टांगें जरा और फैलाकर बैठ रहा। सुमन्त ने उसकी ओर भी न देखा और फाटक के बाहर निकल आया। त्योंही भोंपा बजाती हुई राजा दशमौलिरावणेश्वरप्रसाद नारायण सिंह की कार फाटक के भीतर घुसी। सुमन्त ठिठक कर वहीं खड़ा हो गया।

पांच मिनट बीता, दस मिनट बीता। बीस मिनट बीता। सुमन्त को समय का होश न रहा। होश तब आया जब वही कार पुनः बाहर निकली और वह उससे दबते-दबते बचा। उसने राजा दशमौलिकी बगल में सुमित्रा को देखा। वह मोटर की गति से चड़ी हुई धूल से भर गया, एक अज्ञात पीड़ा से जैसे मर गया।

लाला रूपचन्द ने सेठ हृदयराम पर बिजय के गर्व से भरी हुई दृष्टि डाली । और कहा—कहो सेठ जी । सेठजी ने चुपचाप सन्दूक से सौ सौ रुपये के दो नोट निकाले । दृढ़ हाथों से लाला रूपचन्द को थमाते हुए बोले—लक्ष्मी हजारगश्ता होती है !

सुमन्त चला जा रहा था । कवि-सम्मेलन आरम्भ हो चुका था । कवि शम्भूनाथ सिंह गा रहे थे—समय की शिला पर मधुर चित्र कितने किसी ने बनाये किसी ने मिटाये ।

कली और काँटा

उस गन्दी गली की उस सील और
अंधकार भरी दूकान में बैठा कला-
कार कलाधर सूनी और सपाट चित्र-
पट्टीपर अपनी रंगीली तूलिका से
एक नयी सृष्टि की रचना कर उसमें
प्रेम से प्राण संचार कर रहा था। जिस
मनोयोग से वह यह कार्य कर रहा
था यदि उसी मनोयोग से विधाता
भी अपनी सृष्टि की रचना करता
होता तो वह इतनी अस्पष्ट, विषम-
तापूर्ण और गन्दी न होती ।

अपने काम में कलाधर की तल्लीनता इतने से ही प्रमाणित थी कि प्रायः दस मिनट से गली में खड़े-खड़े सुमन्त सप्रशंस दृष्टि से उसकी चित्र-रचना देख रहा था परन्तु कलाधर को इसकी खबर न थी। प्रायः पाँच मिनट से जिलाधीश का अर्दली उसे पुकार रहा था परन्तु उसे इसकी भी खबर न थी।

पंडित और मूर्ख का साधारण लक्षण यह है कि जो जितनी जल्दी धीरज छोड़ दे वह उतना ही बड़ा मूर्ख और जो जितनी देर तक धैर्य धारण किये रहे वह उतना ही बड़ा पंडित। सुमन्त पंडित था। उसका धैर्य दस मिनट में भी न छूटा! अर्दली मूर्ख था। वह पूरे पाँच मिनट भी धैर्य न रख सका और उसने कलाधर के सामने जाकर कर्कश वन-वाणी में कहा—आप तो जैसे खुद बेकार हैं वैसे ही सबको बेकार समझते हैं। जानते नहीं कि साहब बहादुर सरकारी आदमी हैं। उन्हें बावन काम रहते हैं।

कलाकार कलाधर ने निर्लिप्त भावसे अरदली की बकवास सुन ली परन्तु सुमन्त चिटक उठा। यदि अरदली के स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति होता तो वह उससे उलझे बिना न रहता परन्तु अनुभव ने उसे सिखा दिया था कि जिनकी कमर में सरकारी चपरास होती है उनके पास जाना जरा त्रासकारक होता है। अतः मन ही मन पेंच ताब खाता हुआ सुमन्त वहाँ से दस कदम की दूरी पर स्थित अपने घर की ओर चल पड़ा। घर के दरवाजे में घुसते ही वह भुनभुनाया—कूड़ा-कूड़ा-कूड़ा। अर्थात् उक्त अरदली जैसे जीव समाज में कूड़े की तरह हैं जिन्हें साफ कर देना जरूरी है। अतः जैसे बड़े आदमियों की छाया भी न छू पानेवाले लोग लुब्ध होकर प्रतीकात्मक रूप में उनका पुतला जलावा करते हैं उसी प्रकार अरदली का कुछ भी बिगाड़ न

पाने की स्थिति से जुबुध सुमन्त ने अपनी कोठरी का कूड़ा साफ करना शुरू किया ।

शरीर पर गंजी और कमर में जांचिया पहने सुमन्त सफाई के काम में जो जान से जुटा हुआ था । उसको आदत थी कि जब भी कोई सामाजिक कूड़ा उसके मन में अत्यधिक ग्लानि उत्पन्न करता और वह उस कूड़े को दूर करने में जब अपने को असमर्थ पाता तो सीधे अपने कमरे की सफाई करना आरंभ कर देता । अन्यथा उसका पलंगपर अखबारों की चादर बिछी रहती, तकिये की जगह किताबें रहतीं । उसके छोटे से कमरे का कोई भी अंश ऐसा न था जो सादे, चित्रित अथवा मुद्रित कागज से न ढंका हो । उसकी माता ने एक बार उसका कमरा उसकी सास को दिखाते हुए कहा भी था—देखती हो न बहन, यह बाबा खराबदास की कुटिया है ।

परन्तु इस समय तो बाबा खराबदास सर्वथा सफाई दास बन रहे थे । सफाई दास बनने के प्रयत्न में मकड़ी के जालों से भरा हुआ उसका सिर ऐसा जान पड़ता था जैसे मैले जालीदार रुमाल से ढंका हो । नंगे हाथों पैरों और चेहरे पर गर्द जमी हुई है और ये चीजे ऐसी हैं कि उसे बरबस खराबदास बनाये दे रही हैं ।

मेज की सफाई के सिलसिले में उसने एक दराज खींचकर बाहर निकाल ली । वह सफाई के किसी पिछले दौरे के स्थिति में सर्वथा साफ की जा चुकी थी अतः उसपर धूलकी एक अत्यन्त सूक्ष्म परत जमी हुई थी । उसे कपड़े से पोंछकर यथास्थान रखने के पहले जब उसने उस खाने की भीतरी सफाई आरम्भ की तो उसके पीछे चपका हुआ एक लिफाफा नीचे गिर पड़ा । उसने लिफाफा खोला तो उसमें से एक तस्वीर निकली ।

तस्वीर का रङ्ग उड़ गया था परन्तु रूप बाकी था । सुमन्त सब कुछ भूल एकटक उसकी ओर निहारता रह गया ।

दरवाजे पर मोटर का भोंपू बजा परन्तु सुमन्त तस्वीर देखता रहा । किसी ने दो तीन बार उसका नाम लेकर पुकारा परन्तु सुमन्त तस्वीर देखता रहा । खास लन्दन का सैवाइल रो कटका सूट धारण किये एक सुदर्शन युवक जूता मचमचाता हुआ उसके घर में घुसा और उसके कमरे में आकर ठोक उसकी पीठ के पीछे आ खड़ा हुआ परन्तु सुमन्त तस्वीर ही देखता रह गया ।

सुमन्त की पीठ के पीछे खड़े-खड़े सेठ कान्तिलाल शाह ने एक बार चित्र को देखा फिर चित्र देखने वाले के देखने के तन्मय ढङ्ग को देखा और पुनः स्वयं भी वह तन्मयता से चित्र देखने लगा ।

मिनट भर भी न बीता होगा कि वह जैसे चिल्ला पड़ा—
पहचान लिया पहचान लिया यह तो मिसेज सुमित्रा सहस्रमुण्डे का पुराना फोटो है ।

इन्हें आप कैसे जानते हैं मिस्टर शाह—चौंकते हुए सुमन्त ने सेठ कान्तिलाल से पूछा और कहा कि इनका नाम सुमित्रा सहस्रमुण्डे नहीं, मिसेज सुमित्रा सिंह है ।

‘मैं’ गलती नहीं कर रहा हूँ सुमन्त जी ! विवाह के बाद जैसे स्त्री पिता का गोत्र त्याग कर पति का गोत्र स्वीकार करती है उसी प्रकार पति-परिवर्तन करने पर भी पूर्व पति का गोत्र छोड़ कर उसे नये पति का गोत्र स्वीकार करना पड़ता है । और जानता हूँ इन्हें इस प्रकार कि क्लब में नित्य इनके साथ टेनिस खेलता हूँ और इनके पति जिलाधीश मिस्टर सहस्रमुण्डे मेरे धनिष्ठ मित्र हैं ।’—सेठ कान्तिलाल ने उत्तर दिया ।

‘अच्छा यह बात है। परन्तु मैं तो उन्हें देखने के बाद ही कुछ निश्चित रूप से कह सकूँगा।’

‘देख तो उन्हें तुम आज ही लोगे। मिस्टर और मिसेज सहस्रमुण्डे कला के महान उपासक हैं। विएना, रोम, लन्दन पेरिस आदि के कला संग्रहालयों का दर्शन कर आये हैं। इसलिए कला के भारी मर्मज्ञ हो गये हैं। बेतन का बहुत बड़ा अंश यही शौक पूरा करने में निकल जाता है। बीच-बीच में उन्हें रुपये कर् आवश्यकता पड़ती है और वह ‘आई ओ यू’ का पुरजा देकर मुझ से रुपये लिया करते हैं। इधर उन्हें फिर रुपयों की जरूरत पड़ी है। पिछला ऋण भी बढ़ गया है। अतः सब पुरजे बदल कर एक हैण्ड नोट लिखवाना है। तुम मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी हो। यह मेरा व्यापारिक काम है इसलिए मेरे साथ चलो। इस समय तुम यह नहीं कह सकते कि मैंने आपके मनोविनोद और अफसरों की खुशामद के काम में योग न देने का बचन ले लिया है।’—कान्तिलाल ने सुमन्त को बोलने का अवसर न देते हुए कहा।

‘स्नान कर लूँ’—सुमन्त ने पूछा।

‘हाँ-हाँ, परन्तु इतना बताते जाओ कि यह फोटो तुम्हें कहाँ मिला।’

सुमन्त ने स्नान के लिए जाते-जाते बताया कि कलकत्ता विश्वविद्यालय में पढ़ते समय मेरी इनसे मित्रता थी। तभी का चित्र है। और जाते-जाते यह भी सुना कि सेठ कान्तिलाल कह रहे हैं—तब तो भारी काम निकलेगा।

नल के नीचे नहाते-नहाते सुमन्त ने सोचा कि जैसे पत्थर से टकराने पर सुन्दर से सुन्दर और कीमती से कीमती शीशे का खिलौना चक्रनाचूर हो जाता है उसी प्रकार जीवन की कठोरताओं से टक्कर खाकर सुन्दर से सुन्दर आदर्श नष्ट हो जाता है,

ऊँचे से ऊँचे विचार धूल में बिखर जाते हैं। छात्र-जीवन में उसके कितने सुन्दर भाव थे कितने अच्छे आदर्शवादी विचार थे जिन्हें तिलांजलि देकर उसे अन्त में एक पूंजीपति का प्राइवेट सेक्रेटरी बनना पड़ा है। वन की आग में हरियाली राख हो जाती है, तन की आग हरे भरे विचार क्षेत्र को भस्म कर देती है। वही पूंजीपति आज उससे किसी नारी द्वारा कोई काम निकालने के लिए उसे विवश करना चाहता है। परन्तु एक बार नीचे उतर जाने पर ऊपर चढ़ना जितना ही कठिन होता है, और भी नीचे उतरते जाना उतना ही सरल।

—अजी सुमन्त जल्दी करो। कब तक नहाते रहोगे। सेवक की प्रतीक्षा में रत स्वामी ने कुछ कर्कशता के साथ आवाज दी।

तौलिए से बदन पोंछता हुआ सुमन्त तत्काल आया। उसके एक कान पर साबुन का भाग अब भी लगा हुआ था।

जिस समय शाह कान्तिलाल अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को लेकर जिलाधीश श्री सहस्रमुंडे के बंगले की ओर चले उस समय मिस्टर और मिसेज सहस्रमुंडे अपने बंगले के ड्राइंग रूम में चित्रकार कलाधर की कला कृतिको बड़ी बारीकी के साथ देखते हुए उसकी आलोचना कर रहे थे। मेम साहिबा कह रही थी—उहँक, चित्र अच्छा होने से क्या होता है, आइडिया तो वही दकियानूसी है। हमने आपको प्रेम पर एक चित्र बना लाने के लिए कहा था। उसके लिए आपने वही सिम्बल प्रतीक) चुना जो बाबा आदम के जमाने से चला आ रहा है।

मेम साहब के सामने छोटी सी मेज पर चित्र रखा हुआ था। चित्रकार ने चित्र में किसी उपवन का एक अंश चित्रित किया था जिसमें एक ही पौधा था। पौधे में एक ही कली लगी थी। उस कली पर एक भौरा मंडरा रहा था।

मिस्टर सहस्रमुंडे ने उड़ती सी निगाह उस चित्र पर डाली । उन्हें चित्र कुछ बहुत बुरा नहीं लगा । उनकी जिह्वा कालिदास के 'अनाघातं पुष्पं' कविता का पाठ भी करना चाहती थी परन्तु उस जिह्वा से जो शब्द निकले वे मेम साहिब का समर्थन कर रहे थे । साहब ने कहा—

‘ठीक कहती हो डियरी, बिल्कुल ठीक । सिम्बल प्रतीक) तो सचमुच हैकनीड (दकियानूसी) है ।’

साथ ही उनका मन भी कहता जाता था कि क्या बकते हो ? कली पर अली का मंडराते रहना क्या प्रेम का प्रतीक नहीं ? फिर रेखाओं की सफाई और रंगों का निखार तो सचमुच प्रशंसनीय है ।

बेचारा चित्रकार सिर नीचा किये हुए अपनी कृति की कटु आलोचना सुन रहा था कि मेमसाहिब ने भुनभुनाकर कहा— परसों ही आर्ट एक्जिविशन (कला—प्रदर्शिनी) है । मैंने उसके संचालकों को वचन दिया है कि मैं भी एक चित्र लेकर प्रति-योगिता में योग दूंगी । अब मैं वहां क्या भेजूं, खाक ?

मिस्टर सहस्रमुंडे ने सिगार मुहं में दबा कर जरा धमकी के स्वरमें कहा—सुनो मिस्टर कलाकार, यह तो तुम जानते ही हो कि मैं जिला मजिस्ट्रेट हूँ और शैतान जान भले ही न मारे मगर परेशान तो खूब कर सकता है ।

धमकी कहीं इतनी वजनी न हो जाय कि उसके वजन से बेचारा चित्रकार सांस ही न ले सके, इसलिए उंगलियों में सिगार दबाकर साहब जरा मुस्कराये और बोले—आज दिन भर और रात भर का समय आपको और देता हूँ । कल सुबह आप नया चित्र बनाकर लाइये । वह चित्र ऐसा होना ही चाहिये कि सुमित्रा को फर्स्ट नहीं तो सेकेण्ड प्राइज जरूर मिले ।

पोर्टिको में सेठ कान्तिलाल शाह की मोटर का हार्न बजा । अर्दली ने दौड़कर मोटर का दरवाजा खोला, सेठजी को अत्यन्त विनीत भाव से सलाम किया और फिर उनका कार्ड लेकर और उसे बाकायदे ट्रे में रखकर साहब के सामने पेश कर दिया । साहब ने आंख के इशारे से चित्रकार को जाने की अनुमति दी और अरदली को इशारा किया कि वह सेठजी को सलाम बोले । सुमित्रा ने सिर उठा कर उनकी ओर इस भाव से देखा मानो पूछ रही हो कि मैं यहां वैठी रहूं या चली जाऊँ । साहब ने इशारे से ही जाने की अनुमति दी और फिर मौखिक रूप से उस संकेत में इतना जोड़ दिया कि आज इनसे कुछ जरूरी बात करनी है ।

सुमित्रा ड्राइंग रूम से निकलकर बाग की ओर चली । इधर सेठ कान्तिलाल ने सुमन्त से कहा—तुम तबतक बाग में टहलो । संभवतः वह तुम्हें देख ले । मौका मिले तो काम साध लेना । वैसे मैं ही उसे शीशे में उतार चुका हूँ । थोड़ी सी भिन्न है । देखो तुम्हारे प्रयत्न से शायद वह भी दूर हो जाय । है बड़ी ही अट्रैक्टिव (आकर्षक) आर डेन्टी (शानदार) ।

सेठजी साहब के ड्राइंग रूम में घुसे । सुमन्त बाग की ओर यह सोचते चला कि इस नारी से कभी मैंने भी प्रेम किया था । अपनी शीलवती देहाती पत्नी को छोड़ इसे ही अपनी जीवन-संगिनी बनाना चाहा था । परन्तु इसके गाड़ी और साड़ी के लोभ ने ऐसा न होने दिया । और आज मैं इसे पतन की राहपर ले जाने के लिए तैयार हूँ । लेकिन ऊपर चढ़ने की अपेक्षा नीचे उतरते जाना सुगम है ।

दूरपर टहलती हुई सुमित्रा ने उसे देखा, पहचाना और चौंक उठी । सुमन्त ने भी उसे देखा । चार आंखें हुई । दोनों एक दूसरे की ओर बढ़े । सुमित्रा ने देखा कि सुमन्त गत तीन वर्षों में कुछ

कृश हो गया हो गया है। सुमन्त ने देखा कि गत तीन बरसों में सुमित्रा कुछ स्थूल हो गयी है। हरिणी जैसे हथिनी बनने की तैयारी कर रही हो।

सुमित्रा ने अकृत्रिम आश्चर्य से पूछा—तुम यहां कैसे ?

सुमन्त ने कृत्रिम आश्चर्य से पूछा—तुम यहां कैसे ?

सुमन्त का हाथ पकड़ उसे लोहे की बेच्च की ओर ले जाती हुई सुमित्रा ने कहा—बैठो, बताती हूँ।

जब मन भारी हो जाता है तो पैरों का वजन जैसे अपनेआप बढ़ जाता है। कलाकार कलाधर के पैर जल्दी न उठ रहे थे। वह जैसे उन्हें घसीटता हुआ चला। परन्तु उसकी आंखें किसी नये प्रतीक की तलाश में इधर उधर घूमती हुई बेच्च पर बैठी सुमित्रा और सुमन्त पर पड़ी। सहसा उसकी आंखों को नया प्रकाश मिला, हृदय में नयी स्फूर्ति आयी, पैरों में नयी गति आ गयी। उसे नया प्रतीक मिल गया था।

सुमित्रा सुमन्त से कह रही थी—सच कहती हूँ सुमन्त ! तुम्हारे प्रेम को ठुकराकर माता पिता के कहने से मैं राजा राव-गेश्वर के संग चली गयी लेकिन बड़ा धोखा हुआ। उसके घर जाते ही मेरी आंख खुल गयी। मेरा भ्रम मिट गया। उसकी सारी जमींदारी कर्ज से लदी हुई थी। उसी वक्त जमींदारी उन्मूल बिल पास हुआ। राजा रावगेश्वर के खरपतुआ राज पर कब्जा और उसका प्रबन्ध करने के लिए मिस्टर सहस्रमुंडे आई० सी० एस भेजे गये। खैरियत यह हुई कि उस समय भी राजा रावगेश्वर से मेरी शादी न हुई थी सिर्फ कोर्टशिप चल रही थी। मैंने इस स्थिति का फायदा उठाया और मिस्टर सहस्र-मुंडे से सिविल मैरेज ऐक्ट के अन्तर्गत विवाह कर लिया। अब तो तुम समझ न गये कि मैं यहां कैसे आयी।

सुमन्त ने सिर हिलाकर हुंकारी भरी। सुमित्रा ने पूछा—
अच्छा अब तुम बताओ कि यहां तुम कैसे आये।

पेट सर्वोपरि है सुमित्रा ! उसे ही भरने के लिए यहां आ गया हूं। प्रसिद्ध उद्योगपति सेठ कान्तिलाल शाह मेरे अन्नदाता हैं।

अन्नदाता शब्द का उच्चारण करते हुए सुमन्त ने ऐसा मुहं बनाया मानो उसके मुहं में सड़े गले बदस्वाद अन्न का कन पड़ गया हो।

सुमित्रा ने श्रद्धा के स्वर में कहा—कौन सेठ कान्ति लाल ?
सर शान्ति लाल के लड़के।

हां भाई वही।

पर सुमित्रा तुम यह तो बताओ कि मिस्टर सहस्रमुंडे
विवाह कर तुम सुखी तो हो।

नहीं सुमन्त, सच पूछो तो सहस्रमुंडे मुझे प्यार तो बहुत करता है। बंगले में अकेले पड़े पड़े मेरी तबियत ऊब तो नहीं रही है यह देखने के लिए दिन में कई बार कचहरी से उठकर आता है। परन्तु बेचारे की आमदनी बंधी हुई है। बस पहली तारीख की आशा और तुम जानते हो कि सूखा साखा प्रेम मुझे अच्छा नहीं लगता—सुमित्रा ने कहा।

सुमन्त खिलखिला कर हंस पड़ा। बोला—सुमित्रा तुमने गलती पर गलती की। तुम्हें तो सेठ कान्तिलाल जैसे किसी उद्योगपति को अपना पति बनाना चाहिये था जिसकी आमदनी अथाह होती। फिर तुम्हें नित नयी गाड़ी और साड़ी की कमी न रहती

सुमित्रा ने सुमन्त का व्यंग न पहचाना। कुछ मायूसी भरे स्वर में बोली—हां गलती तो हो ही गयी। मगर अब क्या किया जा सकता है।

गलती सुधारी जा सकती है।—सुमन्त ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

‘देखो अब तुम सचमुच भूल कर रहे हो। रावणेश्वर से मेरा विवाह नहीं हुआ था, सहस्रमुण्डे से मेरा विवाह हुआ है। यह न भूलो।’

‘मैं कुछ भी नहीं भूल रहा हूँ। तुम्हीं भूल गयी हो कि तलाक बिल भी पास हो चुका है।’

सुमित्रा ने नये उत्साह से कहा—हां यह तो है।

‘अच्छा तो सुनो गलती सुधारने का उपाय बताता हूँ। मैंने तुम्हें प्यार की आँख से देखा है अतः मेरा कर्तव्य है कि तुम्हें सुखी देखूँ। तुम जिस वस्तु में सुख मानती हो वहीं तुम्हें प्राप्त करा देने में मुझे कुछ सन्तोष होगा।’

सुमन्त ने अपने स्वामी की ओर से कोर्टशिप आरम्भ की। सुमित्रा तल्लीनता से उसका उपदेश सुनने लगी। दोनों का ध्यान तब टूटा जब सेठ की आवाज सुनाई पड़ी—इसका इन्टरेस्ट आपको न देना होगा मिस्टर सहस्रमुण्डे।

दोनों ने चौंक कर देखा। सहस्रमुण्डे कह रहे थे—थैंक्स, थैंक्स।

उस रात सुमित्रा की तबीयत कुछ ऐसी खराब हुई कि वह अपने पति के साथ क्लब भी न जा सकी। बिस्तर पर पड़ी छटपटाती रही। क्लब से लौटकर मिस्टर सहस्रमुण्डे जब उससे ‘गुड नाइट’ कहने गये तो उस समय भी वह बेचैन करवट बदल रही थी। मिस्टर सहस्रमुण्डे ने संहानुभूति के स्वर में कहा—क्या सिर में अब भी वैसा ही दर्द है? एसपिरिन ने कुछ भी फायदा नहीं किया?

सुमित्रा ने कोई उत्तर न दिया। सहस्रमुण्डे गुड-नाइट कहकर अपने शयनागार में लौट आये। सुमित्रा की बेचैनी से बेचैन बिस्तर पर जा पड़े। खुद भी रात भर करवटें बदलते रहे।

सबेरा होते ही सहस्रमुंडे पत्नी के शयनागार में घुसे । परन्तु सुमित्रा नदारद । सोचा बाग में टहलने गयो होगी । चाय पर आ जायगी ।

मुँह हाथ धोकर सहस्रमुंडे चाय पर पत्नी की प्रतीक्षा करने लगे । देर होती देख अर्दली को भेजा कि सुमित्रा को बुला लाओ । थोड़ी देर बाद लौटकर अर्दली ने दो सूचनाएँ दीं । एक तो यह कि बंगले के अहाते भर में कहीं मेमसाहब का पता नहीं है । और दूसरी यह कि चित्रकार कलाधर हाजिर है ।

साहब परेशान तो हुए पर यह सोचकर चाय पीने लगे कि अपनी किसी सखी के यहाँ गयी होगी । आयेगी तो डाँटूँगा । पत्नी से भी ज्यादा प्रेम करना कम ही अच्छा होता है ।

चपरासी सबेरे की डाक सामने रखकर चला गया । कलाधर ने कमरे में प्रवेश कर सलाम किया । साहब डाक देखने लगे । उन्होंने सर्वप्रथम वह लिफाफा उठाया जिसपर न टिकट था और न डाक की मुहर । उसे खोलते हुए चित्रकार से उन्होंने मुस्कराकर पूछा—कहिए आज क्या बना लाए हैं और स्वयं साहब पत्र पढ़ने लगे ।

चित्रकार ने अत्यन्त विनीत भाव से उनके सामने मेज पर चित्र रख दिया । चित्र में पतझड़ का चित्र अंकित था । उपवन के कोने में एक पत्र-पुष्प विहीन गुलाब का काँटेदार तरु खड़ा था । उसमें कली का कहीं पता न था । कांटों में फंसा हुआ एक भौंरा मरा पड़ा था ।

पत्र पढ़ते ही साहब के चेहरे पर स्याही दौड़ गयी । पत्र में लिखा था—मैं सेठ कान्तिलाल के यहाँ जा रही हूँ । तुम डाइवोर्स (तलाक) की तैयारी करो ।

बड़ी कठिनाई से पत्र की ओर से आंखें हटाकर सहस्रमुंडे ने चित्र पर दृष्टि डाली और तुरत ही वह गरज चढ़े—यह क्या खुराफात बनाकर लाये हो ।

कलाधर ने उसी विनीत भाव से कहा—हुजूर, कलौ गन्ध बनकर चढ़ गयी । भौंरा कांटों में बिंधा रह गया । यही तो प्रेम है ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि चित्र-प्रदर्शिनी में प्रथम पुरस्कार मिस्टर ए० बी० सहस्रमुंडे के 'प्रेम' शीर्षक चित्र को प्राप्त हुआ ।

पाँचवाँ मुरगी

पीरू बहेलिए ने मुरगियों के टापे का दरवाजा खोला और उसकी गन्दी अँगनैया में सैकड़ों मुरगी-मुरगी अपने पंख फड़-फड़ाते हुए इधर उधर घूमने लगे । एक खूबसूरत मुरगी गरदन मटकाती हुई कूड़े की ढेरी में दाना बीनने लगी ।

मुरगी की हाव-भाव भरी मुद्रा ने एक कमजोर-से मुरगी की दृष्टि आकर्षित की । वह गर्दन उठाकर पंख फुलाकर मुरगी की ओर देखते हुए इंच-इंच भर आगे और दो-दो इंच पीछे खसकने लगा ।

एक अपेक्षाकृत बलवान मुरगा उस मुरगी की ओर बढ़ रहा था। बढ़ क्या रहा था, उसके पास तक—इतने पास तक पहुँच गया था कि मुरगी भी कुनमुना उठी। परन्तु अपने से भी तगड़े एक तीसरे मुरगे को उसी ओर आते देख मुरग नम्बर दो ने सामने पड़ा हुआ अन्न का एक कन मुँह में डालते हुए रास्ता छोड़ दिया।

मैदान साफ पाकर तीसरे मुरगे ने बे-लगाम बाँग दी—‘कुकडू कूँ’ और मन्द मन्थर गति से सिर हिलाता हुआ प्रसन्नतापूर्वक वह मुरगी के पास पहुँचा। मुरगी ने कुड़क कर उसकी अगवानी की। कुछ देर दोनों चुहल करते रहे कि एक बड़ा ही दृष्ट-पुष्ट चौथा मुरगा आया। मुरगी ने देखा कि नवागंतुक मुरगे के पंख में रोंए भी अधिक हैं और चोटी भी जरा ज्यादा लाल और ऊंची है। उसने तत्काल तीसरे मुरगे की ओर से मुँह फेर लिया।—और मिनट भर बाद मुरगी चौथे मुरगे के साथ थी। इस तरह साथ थी जैसे जनम-जनम का साथ हो।

पीरू बहलिया यह दृश्य देखकर अश्लील आनन्द का उपभोग कर रहा था। उसकी बगल में खड़ा सुमन्त सोच रहा था कि अभी पाँचवाँ मुरगा भी आ सकता है।

उसी समय कुत्सित आनन्द प्रकट हुए पीरू ने कहा—अभी पाँचवाँ मुरगा भी आ सकता है झुजूर।

साम्यवादी सुमन्त को पीरू के सम्बन्ध में साम्यवादी सिद्धान्त का पालन करने में कुछ संकोच हुआ। ~~कृष्ण~~ दूर खसकते हुए उसने कहा—मैंने जो कहा है उसका ख्याल रखना पीरू और ठीक वक्त पर कोठी के बावर्चीखाने में पहुँचा देना।

पीरू ने वैसे ही असंस्कृत भाव से हँसते हुए उत्तर दिया—खातिरजमा रखिए झुजूर, मुरग मुसल्लम के लिए पाँच मुरगे और

साढ़े तीन दर्जन ताजा चूजे। यही न ? शाम ठीक चार बजे कोठी पर पहुँचा दूँ। यही न ?

‘हां, यही। जान रखो अमेरिकन मेहमान हैं। जरा बदस्वाद हुआ, जरा चूक हुई तो—’

‘हजूर की बात ! यही करते करते पीरू बुड़ा हो गया—’ पीरू ने कहा और सहसा बड़े ही बल्लास से वह चिल्ला उठा— ‘वह देखिये हजूर ! पाँचवाँ मुरगा भी आ पहुँचा’ और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा।

उसकी हँसी पर सुमन्त कुछ लजा-सा गया। पीरू की हँसी निर्लज्ज भी थी और अश्लील भी। अपनी लज्जा छिपाने के लिये चटपट लौटते हुए मुँह फेर कर सुमन्त बोला—अब चलता हूँ।

सुमन्त की झेप से द्विगुण प्रसन्न होते हुए पीरू ने कहा— ‘अच्छा हजूर, सलाम’ और वह अट्टहास कर उठा।

सुमन्त नख-सिख से लाल हो गया। कितना अश्लील है यह अट्टहास।

पूँजीपति स्वामी का साम्यवादी सेक्रेटरी सुमन्त सोचता जा रहा था कि ‘इस अवसर से मेरे स्वामी कितना भारी लाभ उठायेंगे। उनके मार्किन मेहमान मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स अमेरिका के नम्बर एक श्रीमानों में भी एक हैं। सेठ कान्तिलाल के बाप सर शान्तिलाल से उनकी भेंट कभी यूरोप-भ्रमण के अवसर पर हुई थी। तब भी वे दोनों घनिष्ठ मित्र बने। उनकी कृपा से फर्क शान्तिलाल कान्तिलाल दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति करता गया। वही मिस्टर जोनाथन जूलियस जोन्स अपनी तेरहवीं विश्व-परिक्रमा के सिलसिले में भारत आकर गत चार दिनों से सेठ कान्तिलाल की कोठी में सशरीर विराजमान हैं और सेठ कान्तिलाल हैं कि इसी चिन्ता घुले

जा रहे हैं कि कौन सा उपाय करूँ जिससे खुश होकर मिस्टर जूलियस जोन्स भारत से अमेरिका के लिए बन्दर-निर्यात का एकाधिकार मुझे ही दिला दें। कहीं हमारे ही फर्म को इस मामले में सोल एजेण्ट बना दें तो मजा आ जाय। उन्हीं मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स की खातिरदारी के सिलसिले में उसे सबेरे-सबेरे पीरू बहेलिए के यहाँ जाना पड़ा—मुर्ग मुसल्लम और आमलेट के लिए मुरगे, चूजे और अंडोंका आर्डर देने।

मुरगों का खयाल आते ही उसे पीरू की हँसी सुन पड़ी और उसकी आकृति आँखों के सामने आ खड़ी हुई। सुमन्त तीसरी बार लजाया। सचमुच पीरू की हँसी और उसकी मुद्रा ऐसी ही अश्लील थी।

प्रभु-भक्त कम्युनिस्ट सेवक ने अपना ध्यान मुरगों की ओर से बलपूर्वक हटाकर अपने स्वामी की ओर लगाया और त्वामी की ओर ध्यान देने का परिणाम यह हुआ कि स्वामिनी सुमित्रा देवी का ध्यान उसे बरबस आ गया। उसी में लोक-परलोक सरबस समा गया।

उसने प्रत्यक्ष देखा कि युवक सेठ कान्तिलाल ने अपनी सुन्दरी भार्या को—जो सचमुच उनकी सबसे बड़ी पूंजी है—व्यापार में लगा दिया है। मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स की सुख सुविधा पर ध्यान रखने का कार्य उसे सौंप दिया है और वह भी तन-मन-धन से अपना कर्तव्य पालन कर रही है। यह सभी लोग देख रहे हैं—सेठ कान्तिलाल और कुछ भी न देखते हुए इतना अवश्य देख रहे हैं।

लोगों को आश्चर्य था यह जानकर कि मिस्टर जोनाथन जूलियस—जोन्स सत्तर साल के बूढ़े हैं और यह देखकर कि रसिकता और दम-खममें वे जवानों को मात कर रहे हैं। वे

चकित होकर परस्पर पूछते—भाई, इस उमर में नयी जवानी ! यह कैसे ?

जानकार बनने का दावा करने वाले जवाब देते—‘मंकी’-कल्प करा लिया है ।

पुनःसवाल होता—मंकी-कल्प क्या ?

उत्तर मिलता—जैसे प्राचीन भारत में ययाति जैसे विषय विलासी लोग काया-कल्प कराते थे वैसे ही आजकल अमेरिकन बूढ़े ‘मंकी-कल्प’ कराते हैं । इसीलिए तो हजारों बन्दर हर साल अमेरिका भेजे जाते हैं ।

और इसी ‘मंकी’-कल्पित अमेरिकन वृद्ध के साथ आज-कल सुमित्रा चौबीसों घंटे लगी हुई उसका मनोरंजन कर रही है ।

पैर आगे बढ़ते हैं तो आँखें नयी-नयी जगहें देखती हैं; विचार आगे बढ़ता है तो नयी-नयी भावनाओं का दर्शन करता है । सुमन्त का विचार आगे बढ़ा और पिछली रात की घटना उसे रास्ते में मिल गयी । उस रात चाय के प्याले पर तूफान आ गया था । मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स की तबीयत कुछ नासाज थी, फलतः उन्होंने अपने कमरे में ही चाय पी ली थी । इधर चाय पान करते-करते सौन्दर्य की उपयोगिता के प्रश्नपर सुमन्त और सुमित्रा में गरमागरम बहस हो गयी । सुमन्त ने कहा था कि सौन्दर्य स्वयं ही अपनी उपयोगिता है । उसे किसी अन्य उपयोगिता की आवश्यकता नहीं, आकांक्षा नहीं । रूप ऐसी ही वस्तु है । वह मित्र को शत्रु और शत्रु को मित्र बना लेने की क्षमता रखता है ।

सुमित्रा का कथन था कि सौन्दर्य का मूल्य जीवन का सुख है । यदि वही उससे प्राप्त न हुआ तो सारा सौन्दर्य व्यर्थ है । सौन्दर्य का महत्व जानती थी क्लियोपेट्रा जिसकी एक मुठ्ठी में

सीजर और दूसरी में ऐन्टनी की चोटी थी। सौन्दर्य का मूल्य पहचानती थी नूरजहाँ जिसने भारत-सम्राट जहाँगीर को अपना-अपने सौंदर्य का गुलाम बना रखा था। कहना तो न चाहिये मगर रूप का वास्तविक मूल्य जानती हैं वे स्त्रियाँ जिन्हें समाज रूपाजीवा कहता है।

और यही सोचते-सोचते सुमन्त के मानस-चक्षु के समक्ष पीरू की उस मुरगी का चित्र प्रतिभासित हो उठा जो उस मुरगे की ओर आकृष्ट हो रही थी जिसके पंख में सर्वाधिक रोंए थे, जिसकी गर्दन सबसे मोटी थी, जिसकी बाँग के सामने मसजिद के मुअज्जन की बाँग भी हलकी पड़ जाती थी। ओह पीरू का पाँचवाँ मुरगा।

मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स के सम्मान में आज रात सेठ कान्तिलाल शानदार दावत दे रहे थे। इसी दावत की सफलता पर उनकी व्यापारिक सफलता निर्भर करती थी। यदि कहीं उनकी गोटी चित्त पड़ गयी तो तीन लाख डालर निखरचे मुनाफा था। अतः सेठ जी के सेक्रेटरी के लिए मुसीबत स्वाभाविक थी। यदि दावत में तनिक भी त्रुटि हुई तो उसी की गरदन नापी जायगी। उसकी व्यस्तता उस समय चरम सीमा पर पहुँच गयी जब मिसेज कान्तिलाल अर्थात् सुमित्रा देवी ने उसे जरूरी काम से बुला भेजा।

स्वामिनी की आज्ञा पाकर जब वह उनके कमरे में पहुँचा तो यह देखकर चकित रह गया कि देवी जी रङ्ग बिरङ्गी साड़ियों के समुद्र में तैर रही हैं। एक ओर कतान की साड़ियों का ढेर लगा है तो दूसरी ओर जङ्गलेदार बनारसी साड़ियों का स्तूप खड़ा है। जरी की मद्रासी साड़ियाँ भी कम नहीं हैं। और

ब्लाउज ? विभिन्न रङ्ग और विभिन्न काट के ब्लाउजों की प्रदर्शनी सी लगी है । सुमित्रा कभी यह साड़ी उठाती है फिर रख देती है । कभी उस ब्लाउज का परीक्षण करती है और फिर उसे भी उपेक्षा से फेंक देती है । बेचारी के सामने सबसे बड़ी समस्या यही है कि शाम दावत के अवसर पर वह कौन सी साड़ी और कौन सा ब्लाउज पहने । समस्या का कोई कूल किनारा न कर पाने पर सुमित्रा ने अपने बाल-सखा, मित्र, प्रेमी और सेवक सुमन्त को सलाह के लिए बुला भेजा ।

‘कहिये क्या हुक्म है’—सुमन्त ने कृत्रिम सम्मान दिखाते हुए सुमित्रा से पूछा ! साड़ियों की लहरों में से अपना सिर उठाते हुए सुमित्रा ने सुमन्त को देखा । उसकी सम्मान सूचक वाणी की कृत्रिमता को पहचाना । कुछ कौतुक भी अनुभव किया और तब मुस्कराती हुई उससे बोली—तुम्हें यह सलाह देने के लिए बुलाया है कि आज दावत में कौन-सी साड़ी और ब्लाउज पहनूँ । रङ्ग भी मैच करे और रूप पर भी निखार आये ।

जैसे पुस्तक में भूमिका होती है उसी प्रकार उत्तर देने के पहले सुमन्त ने जैसे भूमिका बांधी और कहा—

‘उसे क्या काम जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी
लगा करता है कितना खुशनुमा यह चाँद बेगहने ॥’

—‘चापलूसी करने के लिए नहीं, सलाह देने के लिए तुम्हें बुलाया है ।’ सुमित्रा ने कृत्रिम विरक्ति प्रकट करते हुए कहा ।

सुमन्त ने उत्तर दिया—मैंने भी तो आपको सलाह ही दी है । यदि मेरी बात समझ में न आयी हो तो और भी स्पष्ट शब्दों में कहूँ ।

‘है जवानी खुद जवानी का सिंगार
सादगी गहना है इस सिन के लिए ॥’

—‘दावत में कुल दो घंटे बाकी रह गये हैं और तुम्हें शायरी सूझ रही है। जल्दी बताओ मैं क्या पहनूँ।’ सुमित्रा ने आतुरता से पूछा।

सुमन्त को मजाक सूझा। उसने कहा—अगर सच पूछती हैं तो इनमें से एक भी साड़ी या ब्लाउज इस काम का नहीं है कि आप पहनें। इस नयी ठाट की दावत में आपका भी ठाट कुछ नया ही होना चाहिये। मेरी राय है कि आप आज कोई नयी साड़ी पहनिये।

नयी साड़ी की सलाह सुमित्रा को बेहद पसन्द आयी। वह बोली—यह तो तुमने जैसे मेरे मन की बात कही है। बस अब सीधे बाजार चले जाओ और खुद पसन्द कर एक साड़ी लेते आओ जो इस ब्लाउज से मैच करें।

सुमन्त पसोपेश में पड़ा। उधर दावत का वक्त करीब है इधर देवी जी उसे बाजार भेज रही हैं। उसने जैसे अपनी जान बचाने के लिए कहा—साड़ी पहनना है आपको और पसन्द करूँ मैं। यह तो ठीक नहीं। मोटर पर बैठकर आप ही चली जाइये। दस मिनट में तो वापस आ जायँगी। और साड़ी भी अपनी पसन्द की खरीद सकेंगी।

—बातें मत बनाओ। बाजार तुम्हीं को जाना होगा। रही मेरे पसन्द करने की बात सो यह समझ लो कि भोजन अपनी रुचि का अच्छा होता है और ऋंगार दूसरों की रुचि का।

सुमन्त को बाजार जाना ही पड़ा। नयी साड़ी और नयी गाड़ी का लोभ सुमित्रा के जीवन की प्रेरक शक्ति है। इसकी चरम परिणति कहाँ होगी।

बादामी रंग कागज में लपेटी हुई साड़ी का बंडल हाथ में लिये हुए सुमन्त जिस समय कोठी पर लौटा उस समय कोठी में उसकी खोज जोरों से हो रही थी। सेठ कान्तिलाल उसकी अनुपस्थिति पर बार-बार झल्ला रहे थे। ऐसे महत्वपूर्ण मौके पर प्राइवेट सेक्रेटरी का गायब हो जाना अक्षम्य अपराध था। फलतः उसे देखते ही बफर उठे। बोले देखता हूँ तुम मेरी नाक कटवाकर ही मानोगे सुमन्त !

सुमन्त के मन में आया कि कह दे कि आपकी नाक काटेंगे आपके घरवाले और घरवाली, मुझ गरीब में यह शक्ति कहाँ कि आपकी नाक काट सकूँ। परन्तु उसी दिन घर से आयी हुई चीठी अब भी उसके पाकेट में अंगारे की तरह जलती हुई पड़ी थी। वह चिट्ठी जिसमें उसको देहाती अनपढ़ पत्नी ने लिखा था कि अम्माजी गंगा-स्नान कर लौटते समय एक मोटर गाड़ी से धक्का खाकर चोट खा गयी हैं। उनकी दवा के लिए पैसा नहीं है। अपना अन्तिम जेवर बेच कर उनकी चिकित्सा कर रही हूँ परन्तु मेरे शरीर पर जो एकमात्र धोती रह गयी है वह मरम्मत करते-करते इतनी बेमरम्मत हो उठी है कि उसे पहनकर अब बाहर नहीं निकला जा सकता। कुछ रुपये तत्काल भेजो।

चन्द्रा की उक्त चिट्ठी ने उसे गुस्ताख बनते-बनते बचा लिया। वह विनीत स्वर में कुछ ठकुर सुहाती कहने जा ही रहा था कि सुमित्रा आ गयी और उसने आते ही पूछा—कहिये साड़ी ले आये।

साड़ी का बंडल उसे थमाते हुए सुमन्त ने कहा—जी अभी

लिये चला आ रहा हूँ। इसीलिए मालिक की फटकार भी सुन रहा हूँ।

सेठ कान्तीलाल चौंके। 'साड़ी?' उन्होंने पूछा—'कैसी साड़ी? इतनी साड़ियां रहते नयी साड़ी की क्या जरूरत पड़ी। सुमित्रा, तुम बहुत फिजूलखर्च हो। मैं तो मर-मर कर पैसा पैदा करता हूँ और तुम उसे इस तरह फिजूल उड़ाती हो।

अपने दूसरे अथवा तीसरे पति के साथ दो साल रह लेने पर सुमित्रा उनकी प्रकृति से बखूबी वाकिफ थी। जानती थी कि सेठ कान्तीलाल के पास पैसा तो जरूर है मगर वह दिल नहीं है जो उस पैसे का समुचित उपयोग कर सके। सेठ कान्तीलाल पहले भी उसे उसकी फिजूलखर्ची पर डाँट फटकार चुके थे। परन्तु वह एकान्त की बात थी और आज? आज तो इतने नौकरों-चाकरों के सामने उन्होंने उसकी इज्जत उतार ली। फलतः वह ताव खा गयी और ताव खाना था कि शिष्टता का सारा भाव उसके मन से तिरोहित हो गया। देले का जवाब पत्थर से देती हुई बोली—तुम कोरे बनिये हो। खाली पैसा जोड़जोड़कर रखना जानते हो। जीवन में उसका क्या उपयोग यह तो तुम्हें मालूम नहीं। दो साल हुए शादी के वक्त जो कार दे दी वही अब तक चली जा रही है। पारसाल से कह रही हूँ कि गाड़ी खराब होते-होते अब छकड़ा जैसी रह गयी है उसे बदल दो। मगर वही आजकल कर रहे हो। आखिर किस बाप के बेटे हो। उसी के न जिसकी कंजूसी की वजह से शहर में कोई सुबह के वक्त जिसका नाम नहीं लेता।

सुमित्रा ने यदि इससे भी कड़ी बात सेठजी से एकान्त में कही होती तो वे मुदित होकर हंसते, उसे और भी चिढ़ाकर मजा लेते परन्तु नौकरों के सामने पत्नी की यह फटकार वे भी

न सह सके और क्रोध में आकर चिल्ला उठे—कंगालों की लड़कियों के योग्य ही बात तुमने कही है। यह पैसा जोड़ने का ही परिणाम है कि बनिये का बेटा राजाओं का राजा बना हुआ है और पैसा उड़ाने का परिणाम है कि तुम्हारे बाप राजा बहादुर होकर भी भिखमंगे से बदतर हैं।

सुमन्त का मन पीरू बहेलिए के आंगन में पहुँच गया। उसने जैसे देखा कि चौथा मुरगा मुरगी की चोटी पकड़कर उसे भकभोर रहा है। उसने इधर-उधर निगाह दौड़ायी कि पाँचवाँ मुरगा कहाँ है जो आकर मुरगी की रक्षा करे।

बात आगे बढ़ती कि मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स की सेवा में नियुक्त अर्दली ने आकर सलाम किया और कहा कि साहब ने मेम साहब को सलाम कहा है। सेठ कान्तिलाल दांत चबा कर रह गये। सुमित्रा शान से अर्दली के साथ मिस्टर जोनाथन जूलियस जोन्स के कमरे की ओर चली। सुमन्त अपने ओठों में ही मुस्कराया—वाह रे पीरू के पाँचवें मुरगे !

दुर्योधन को शाप था कि जिस समय उसके हृदय में हर्ष और विषाद की भावनाएँ एक साथ समान रूप से उदित होंगी उसी समय उसकी मृत्यु होगी। यदि सेठ कान्तिलाल को भी ऐसा ही शाप प्राप्त रहता तो आज की दावत उनके साथ पूरी अदावत करती और उनके प्राण-पखेरू उनके तन पिंजर से निश्चय ही उड़ जाते। कारण इस समय सेठजी के मन में जितना ही हर्ष था उतना ही विषाद। दावत अत्यन्त शानदार रही, यह आनन्द का विषय था। पीरू के पाँचवें मुरगे ने मुर्ग मुसल्लम बनकर

दावत का रंग बद-रंग कर दिया यही सेठजी के विषाद का कारण था ।

संयोग की बात कि पाँचवाँ मुरगा मिस्टर जोनाथन जूलियस जोन्स की मेज पर ही रखा गया । उन्होंने उसे चाकू से काटकर पहला ही कौर कांटे के सहारे मुँह में डाला था कि खटाके की आवाज के साथ उनका चेहरा विकृत हो गया । खैरियत इतनी ही थी कि साहब के दांत नकली थे । असली होते तो दो एक टूटकर नीचे गिर पड़ते और साहब को भी बड़ी पीड़ा होती । नकली होने के कारण वे अपने स्थान से तनिक खसककर ही रह गये । साहब ने कौर थूक दिया । मुरगे के मांस में मटर बराबर पत्थर का एक चमकीला टुकड़ा था ।

दावत समाप्त हुई तो हर्ष विषाद का एक दूसरा प्रकरण सेठ जी के सामने आया । साहब ने उनकी अभिलाषा पूर्ण कर दी थी । जिस समय उन्होंने सेठ को बन्दर-निर्यात के एकाधिकार का लाइसेन्स दिया उस समय सेठ जी के आनन्द का पार न रहा । परन्तु ज्योंही साहब ने अपना दूसरा प्रस्ताव उपस्थित किया त्योंही सेठ जी के पैर के नीचे से धरती खसकती मालूम हुई । साहब ने सेठ जी से अनुमति माँगी थी कि वे मिसेज सुमित्रा लाल को अमेरिका भ्रमण कर आने की इजाजत दे दें । उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि सुमित्रा देवी को किसी तरह की तकलीफ या अस्विधा न होने पायेगी और माल का पहला कनसाइनमेन्ट पहुँचते ही वे स्वदेश वापस भेज दी जायेंगी । उन्होंने विषपूर्ण नेत्रों से मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स की बगल में सुमित्रा को देखा । वह मुस्करा रही थी । विमान एयरो ड्रोम पर साहब की प्रतीक्षा कर रहा था । अतः

साहब को जल्दी थी। सेठ जी को भी जल्दी से अनुमति प्रदान कर देनी पड़ी।

सेठ जी के साथ सुमन्त जब विमान पर मिस्टर जोनाथन जूलियस-जोन्स और सुमित्रा को बिदाकर कोठी लौटा उस समय रात के दो बज गये थे। सेठ भी हृष-विषाद के मूले में मूल रहे थे और सुमन्त भी। सुमित्रा के अमेरिका चले जाने से सुमन्त दुःखी था। वह बन्धन हमेशा के लिए कट गया यह सोचकर सुखी था। उसने अनुभव किया कि सेठ कान्तिलाल के यहाँ अब उसके बने रहने की कोई आवश्यकता नहीं। पेट पालने भर पैसा वह कहीं भी पैदा कर लेगा। यहाँ रहने पर तो स्मृतियाँ ही उसे डसती रहेंगी। उसके प्रथम प्रेम की पात्री सुमित्रा आखिर अमेरिका चली गयी—हमेशा के लिए। सुमन्त की आत्मा कह रही थी कि सुमित्रा अब अमेरिका से लौटनेवाली नहीं। उसने विदा होते-होते सुमन्त से कहा था—क्यों जी सुमन्त, एक गरीब विद्यार्थी की अपेक्षा एक राजा बहादुर अच्छा है। एक बिगड़े जमीन्दार राजाबहादुर की अपेक्षा एक सिविलियन अफसर ज्यादा अच्छा होता है। उस सिविलियन से एक भारतीय सेठ अधिक अच्छा है और भारतीय सेठ से अमेरिकन उद्योग-पति लाख दर्जे बेहतर है। है न ?

और सुमन्त की आँखों के सामने सुमित्रा सम्बन्धी जीवन के सभी चित्र एक बार घूम गये। कलकत्ता विश्वविद्यालय के दिन। तरुण अरुणोदय। जब पूरी आशा थी कि गरीब होने पर भी अपनी प्रतिभा के बलपर वह सुमित्रा से विवाह कर सकेगा। सहसा राजा बहादुर दशमौलिरावणेश्वरप्रसाद नारायणसिंह का आगमन और धन के बल पर सुमित्रा-हरण। फिर मिस्टर सहस्र-

मुण्डे आई० सी० एस० की पत्नी-रूप में सुमित्रा का दर्शन। वहाँ से उसे सेठ कान्तिलाल के यहाँ इसलिए बहका लाना कि इसी प्रकार उसे निरन्तर देखने का सुख लाभ किया जा सकेगा। और आज रात वह आशा तन्तु भी सदा के लिए टूट गया। सुमन्त त्याग पत्र लिखने लगा। परन्तु लिख गया एक कहानी।

पूर्व दिशा में प्रकाश की पहली किरणें फैल चुकी थीं जब सुमन्त ने अपनी कहानी समाप्त की। उसे लेकर वह बाग में सेठ जी के पास पहुँचा। सेठ जी नित्य सुबह बाग में टहला करते थे। आज भी टहल रहे थे। सुमन्त को देखते ही बोले—बस अब बिलम्ब न करो और बन्दर पकड़वाना शुरू कर दो। लाखों का बारा-न्याग करते देर न लगेगी।

इसी समय पीरू बहेलिए ने आकर सलाम किया। कल शाम वह जिस समय मुरगे और चूजे ले कर आया था उस समय न मालिक से भेंट हुई न सेक्रेटरी से और पीरू का विश्वास आज नकद कल उधार के सिद्धान्त में था। फलतः वह दाम लेने के लिए सुबह ही ड्योढी पर हाजिर हो गया। इतने में मुनीम जी भी मालिक के सामने आये और उनके हाथ में एक पुड़िया देते हुए बोले—सरकार यह पत्थर का टुकड़ा तो हीरा है। जौहरी उसकी कीमत करीब पाँच हजार रुपये लगा रहे हैं।

सेठ ने आश्चर्य से पूछा—हीरे का टुकड़ा मुरगे के पेट में कैसे आया?

कहीं से चुग लिया होगा सरकार—मुनीम ने विनय से कहा।

पीरू पछताकर रह गया। कहीं इस मुरगे को मैंने ही हलाल किया होता तो हीरे का यह टुकड़ा मेरे हाथ लगता। मगर ईमानदारी बड़ी चीज है। अतः उसने हीरे के टुकड़े की कीमत न मांग कर केवल मुरगे की कीमत मांगी। सेठ जी बिगड़ बैठे

—मुरगे की कीमत माँगने आये हो। तुम्हारे मुरगे की वजह से रात मेरी बड़ी बेइज्जती हुई। मेहमानों के सामने मुझे केपना पड़ा। अगर मेहमान का दाँत टूट जाता तब।

और सेठ सुमन्त की ओर घूमे। बोले— तो समझ गये न ? मिस्टर जूलियस जोन्स ने मेरे लिए लाखों का डौल लगा दिया है। अब तुम काम में जुट जाओ।

सुमन्त ने सिर खुजलाते हुए कुंठित किन्तु दृढ़ स्वर में कहा— नहीं सेठ जी, अब आप मुझे छुट्टी दे दीजिये, यह मेरा इस्तीफा है।

उसने सेठ के हाथ में अपनी कहानी दे दी।

उसी समय पीरू ने कहा—हुजूर, मेरे पाँचवें मुरगे की वजह से हुजूर की बेइज्जती भले हुई हो मगर वह पैसा भी काफी दे गया हुजूर को।

पीरू वही हँसी हँसने लगा जिसमें सुमन्त को अश्लीलता की गन्ध आती थी। सेठ ने मुनीम को इशारा किया कि इन दोनों का हिसाब साफ कर दो।

लौटते हुए पीरू ने सुमन्त से कहा—देखा हुजूर, पाँचवें मुरगे ने सरकार की इज्जत तो जरूर ले ली। मगर बदले में पैसा काफी दे गया।

सुमन्त ने मुस्करा कर पीरू की ओर देखा। पीरू ने पुनः अट्टहास किया।

अट्टहास की ध्वनि सेठ कान्तिलाल के कानों में भी पड़ी। परन्तु उन्होंने उस पर ध्यान न दिया और सुमन्त की कहानी

पढ़ने के लिए कागज खोला । सुमन्त की कहानी का शीर्षक था 'सत्य और स्वप्न ।'

पीरू रास्ते में रह-रह कर कह उठता था —बाह रे पाँचवें मुरगे ।

सुमन्त रह-रह कर सोचता था—आह ! पीरू का पाँचवाँ मुरगा ।

सत्य और स्वप्न

प्रहरी ने छ बार घंटे पर चोट की । सुदूर शैल-शिखर पर अस्तप्राय सूर्य की किरणें अभी नाच रही थीं । वितस्ता की चंचल लहरों से उनकी आँख-मिचौनी चल रही थी और खग-कुल व्याकुल रव करता हुआ निज नोडोन्मुख था । बस अभी-अभी काले अम्बर से प्रतीचीका रक्त-गोलक ढक जाने वाला था । प्रहरी ने छ बजाकर दिनान्त की सूचना दी और फिर अपने स्थान से सामने की शैल माला की ओर एक टक देखने लगा । साथ ही कुछ गुनगुनाने भी—

‘किसी समय कहीं कोई कानन था । भरने उसे धोते और चन्द्रमा उसपर अपनी किरनों का पानी चढ़ाता । उसी कानन के एक कोने में एक तरु था और उस तरु में एक कली । उस कली को मलयानिल ने अनुप्राणित किया और ऊषा ने अनुरंजित । भ्रमर उसके पास आया और गुनगुनाया—वाह क्या रूप है । कली फूल उठी । भ्रमर ने पुनः कहा—मेरा प्रेम स्वीकार करो । कली खिलखिलायी—प्रेम कोई खिलौना है क्या ? निर्मम मालाकार ने उसे तोड़ लिया । गूथी हुई माला में उसे स्थान दिया । कली का निसर्ग सौन्दर्य नष्ट हो गया । आह ! वह हार पड़ा किसी विलासी के गले में । भौंरा उसी कली को खोजता हुआ यहाँ आया है । हे बंधनप्रस्त कलिके ! तुम्हारा बिछुड़ा प्रेमी तुम्हें खोजता यहाँ आया है ।

प्रहरी का गाना समाप्त हो गया । किकिनी और नूपुर की भंकार सुनकर वह उठा और टहलने लगा । काश्मीर की कोमल कामिनियों से घिरी काश्मीर की रानी सामने आयी । अद्भुत सौन्दर्य समारोह था । प्रहरी क्षणभर के लिए चकित हो गया । फिर संभलकर उसने अभिवादन किया । रानी भी प्रहरी को देखकर कुछ चौंक-सी गयी, फिर संभली और दासियों के साथ उद्यान का रास्ता लिया ।

प्रहरी फिर गाने लगा ।

सत्य और स्वप्न में वही अन्तर है जो वर्तमान और भूत में । वर्तमान सत्य है और भूत स्वप्न । यदि वर्तमान निर्धन भिक्षुक हो तो भूत धन-कुबेर भी हो सकता है । वर्तमान सेवक हो तो आश्चर्य नहीं कि भूत स्वामी रहा हो । सुख की सत्यता का जब हम अनुभव करते हैं तब दुख सपना हो जाता है और दुख की रात में

तो सुख सपना है ही । प्रहरी भी दुख की आंधियारी में सुख का सपना देखने लगा ।

वाराणसी में गंगा का तट है और गंगा-तट पर नगर-सेठ का प्रासाद तुल्य भवन । भवन में उद्यान है । उद्यान में गंगा का पानी नहर द्वारा आता है । ग्रीष्म की कड़ी धूप में नहर के किनारे कुंज में बारह वर्ष का एक बालक और दस वर्ष की एक बालिका खेल रहे हैं । बालक है नगरसेठ का एकलौता पुत्र केशव और बालिका कमला है दासी पुत्री ।

सेठ का पुत्र भी सेठ है और दासी की पुत्री भी दासी ।

प्रभु ! कमला ने पुकारा ।

क्या है दासी—प्रभु ने पूछा ।

दोनों ने उक्त सम्बोधन अपने-अपने जनक-जननी से सीखे थे ।

—स्वामी, देखो कैसे हैं ये लाल-लाल बंधूक कुसुम । थोड़े से चुन तो दो । मैं माला गूथूंगी ।

—माला ? माला क्या होगी दासी ।

—‘देवता की पूजा करूंगी, देवता को चढ़ाऊंगी स्वामी ।’

स्वामी को दासी की आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी । वह फूल चुनने लगा, वह माला गूथने लगी । बीच-बीच में दासी स्वामी की ओर देख लेती थी । सूई की तीखी नोक धंसने से उसकी चम्पा कली सी उंगलियों पर रक्त-विन्दु छड़ा जाते और रक्त की लालिमा बंधूक की लाली में मिल जाती ।

माला तैयार हो गयी ।

‘दासी-चलती हो देव मन्दिर ।’

—क्यों ?

—देवता को माला चढ़ाने, उपासना करने ।

—मेरे देवता तो तुम्हीं हो स्वामी ।

दासी ने स्वामी के गले में कष्ट से गूंथी हुई माला डाल दी । श्रम-सार्थक हो गया । रसाल पर बैठी कोकिल कूक उठी । दोपहर की उष्ण वायु ने मन्द मलयानिल बनकर कुंज में प्रवेश किया । प्रहरी ने ठंडी सांस भरी । स्वप्न चलने लगा ।

ग्रीष्म के बाद पावस और पावस के पश्चात् शरद । शरदऋतु का प्रारंभ था । नरेश विजय के लिए निकले, व्यवसायी व्यवसाय के लिए और वाराणसी के सर्वश्रेष्ठ श्रेष्ठी इन्द्रदत्त निकले तीर्थ यात्रा के लिए । उनका पुत्र उनके साथ था और पुत्र के अनुरोध से उसकी दासी भी ।

आगे-आगे अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित अश्वारोहियों की पंक्ति थी । पीछे-पीछे बैल गाड़ियों पर सेठ, सेठ का पुत्र और सब सामान था । यात्रि-दल हँसता खेलता सजग चला जा रहा था । संध्या हो गयी । इन्द्रदत्त की आज्ञा से लोगों ने डेरे डाल दिये ।

रात्रि दो पहर बीत गयी । यात्रा से क्लान्त यात्री—दल बेसुध सो गया ।

‘स्वामी-स्वामी’ कमला ने केशव को जगाया ।

क्या है—केशव ने जागकर पूछा ।

‘वह देखो कैसा प्रकाश है ।’

केशव ने देखा कि थोड़ी दूर पर जैसे सैकड़ों मशालें जल रही हों ! उसने न जाने क्या सोचकर उत्तर दिया—वह सब कुछ नहीं है । तुम चुपचाप सो रहो ।

केशव ने स्वयं भय से अपनी आँखें मूंद लीं ।

आध घंटा भी न बीता होगा कि सीमा प्रान्तीय विदेशी दस्युओं का एक दल यात्रियों पर दूट पड़ा । कुछ रत्नक तो कट

गये । शेष घोड़ों की नंगी पीठपर बैठ हवा हो गये । इन्द्र-दत्त की पाई-पाई लूट ली गयी और अन्त में स्वयं उन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा । दस्युओं के हाथ लगी विशाल संपत्ति और एक बालक तथा एक बालिका ।

प्रहरो के बदल पर विभीषिका एक बार पुनः स्पष्ट हो उठी । वह काँप सा गया । स्वप्न आगे बढ़ा ।

काबुल के बाजार में जन-राशि उमड़ पड़ी थी । नर-नारी गाय बकरियों की तरह बेचे जा रहे थे । बिकनेवाले तो पशु थे ही परन्तु मनुष्य होकर मनुष्य को बेचनेवाले क्या थे ? पत्थर !

इन्हीं पशुओं में था एक निरीह बालक और एक कोमल कलेवरा बालिका । बालक बिका पाँच दीनारों पर और बालिका का मूल्य लगा पचीस दीनार । बालक को खरीदा एक सैनिक ने और बालिका बिकी शाहजादा काश्मीर के हाथों ।

सैनिक के साथियों ने कहा—यार, तुम तो ठग गये । यह लड़का तो महज बोदा है ।

शाहजादे से कहा गया—यह सौदा नफे का रहा । हुजूर ने तोहफा पाया ।

इसके बाद सैनिक ने बालक को सैनिक बनाने का अथक परिश्रम किया परन्तु वणिक पुत्र सैनिक न बना । बना क्या ? खोजा ।

जोहरा बेगम को आज की संध्या नीरस जान पड़ती थी और सैर फीका लगता था । बेगम आज अन्यमनस्क थीं । दासियों ने अनेक प्रयत्न किये पर बेगम के मनोभावों में कोई परिवर्तन होता था । इतने में प्रहरी के गाने की ध्वनि बेगम के कानों में

पड़ी। बेगम ने वह गाना बड़ी तन्मयता से सुना। गाना समाप्त हो गया पर बेगम को तल्लीनता न दूटी। अंधियारी क्रमशः घनी हो रही थी। एक दासी ने सविनय कहा—अंधेरा हो गया हुआ।

—अंधेरा हो गया। अच्छा, तो चलो।

बेगम महल की ओर लौटीं। उन्हें आते देख प्रहरी पूर्ववत् सजग हो गया परन्तु बेगम उसपर दृष्टिपात किये बिना ही आगे बढ़ गयीं। उन्होंने अपने एकान्त कक्ष में जाकर अपनी सभी दासियों को हटा दिया। रोक लिया लैला को। लैला अपनी स्वामिनी की विश्वासपात्र दासी ही नहीं वरन् सुचतुरा दुःख सुख में कल्याणकारिणी मंत्रदात्री सखी भी थी।

—लैला, यह नया खोजा कब आया है।

—इसे तो पन्द्रह बीस दिनों से देख रही हूँ हुआ।

—मैंने तो इसे पहले नहीं देखा।

—जी हाँ इसका पहरा दिन का रहता था।

—लैला, यह खोजा गाता बहुत अच्छा है।

—उसका गाना सुनना चाहती हैं आप ? मैं उसे बुलाऊँ।

—बुलाओगी तो लेकिन उसके पहरे का क्या होगा।

—किसी बाँदो को बैठा दूंगी।

—तो जरा ठहर कर बुलाना।

इसी बीच एक दासी ने आकर शाह के आगमन की सूचना दी। बेगम ने नम्रतापूर्वक शाह की अभ्यर्थना की। दरबार खास जाने में विलम्ब होता देख कुछ देर बाद शाह बेगम से बिदा हुए।

रात्रि का पहला पहर बीता। प्रहरी ने वैसे ही घंटा बजाकर समय की सूचना दी और टहलने लगा। तुषार मंडित गिरि शिखर को छूती हुई बर्फाली वायु सम्राटे से बह रही थी। प्रहरी उतना गर्म कम्बल ओढ़े रहने पर भी कांप-कांप जाता था। इतने

में छम छम की ध्वनि उसके कानों में पड़ी। प्रहरी देखने लगा कि इस बीहड़ बेला में कौन कोमलांगी सुरक्षित अन्तःपुर को छोड़कर बाहर जा रही है। क्षण भर में दो प्रमदा मूर्तियां बाहर आयीं। उनमें से एक प्रहरी से बोली—जहीर, तुम्हें बेगम साहिया याद कर रही हैं। आओ मेरे साथ।

प्रहरी एकबार पहरा छोड़कर जाने में हिचका। इसी बीच बांदी ने फिर कहा—तुम्हारे पहरे पर यह रहेगी।

प्रहरी ने क्षणभर विचार किया और फिर बांदी के साथ अन्तःपुर के गुप्त द्वार में घुसकर लुप्त होकर सीधे बेगम के शयनागार में निकला। बेगम दर्पण के सामने खड़ी थी। प्रहरी भी सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा हो गया। कुछ देर ठहर कर वैसे ही सिर झुकाये हुए बोला—क्या हुक्म है।

बांदी चली गयी थी। बेगम ने उत्तर नहीं दिया। पूर्व स्मृतियाँ आँसू की बूँदें बनकर उनकी आँखों से टप-टप चूरही थीं। उन्होंने आँसू पोंछते हुए कहा—स्वामी, मुझे क्षमा करो।

स्वामिनी का सेवक से यह कहना शोभा नहीं देता—प्रहरी ने बिना सिर उठाये ही कहा।

—मेरा कुछ दोष नहीं है, सच कहती हूँ।

—जानता हूँ, दोष दुर्भाग्य का है और किसी का नहीं।

—तब भी क्षमा न करोगे।

मैं हूँ खोजा—क्लीव, निकृष्ट नर, निर्जीव और अधम प्राणी। मुझे क्षमा शब्द के उच्चारण का अधिकार नहीं है और कमले तुम बेगम हो, शाह की पत्नी, मेरी स्वामिनी! तुम्हीं मुझे क्षमा कर दो।

—मैं बेश्या हो गयी हूँ। तन दूसरे का, मन दूसरे का यही तो पुर प्रमदाओं का लक्षण है। जो वैभव से क्रय की जाती है वही वेश्या है। मेरा शरीर भी धन से खरीदा गया है।

मैं खोजा हूँ क्रीतदास हूँ—प्रहरी ने पुनः कहा।

—मैं उस क्रीतदास की क्रीतदासी हूँ।

—तब तुम्हीं पहले मुझे क्षमा करो। मेरी कायरता ने ही यह स्थिति उत्पन्न की।

—क्षमा तो है ही परन्तु वह कायरता नहीं, वचपन का स्वाभाविक भय था। स्वामी, एक बार पुनः अपने मुँह से वही मधुर सम्बोधन करो, मुझे पुकारो दासी।

—दासी, मैंने भी तुम्हें क्षमा किया।

रात बीतने लगी। विछुड़े हुए दो प्राणी जब मिलते हैं तब उनकी बातें जैसी समाप्त ही नहीं होना चाहतीं। सबेरा होने में अब विलम्ब न था। प्रहरी पुनः अपने स्थान पर लौटा। बाँदी को छुट्टी मिली। पात्र पुनः जल में डूबने जा रहा था। पहरा बदलने के लिए दूसरा प्रहरी आया। पात्र जल में डूब गया। प्रहरी ने घण्टा बजाकर छ बजने की सूचना दी और कुछ गुनगुनाते हुए वह अपने डेरे की ओर लौट पड़ा। वायु में उसके शब्द गूँज रहे थे—स्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफसाना था।

१

चित्रा

दिल-ए-नादां तुम्हे हुआ क्या है

‘आखिर इस दर्द को दवा क्या है’ शीर्षक के साथ उस दिन के दैनिक समाचार पत्र जब अपने सायंकालिक संस्करण के रूप में प्रकट हुए तो उस छोटे से परन्तु महत्वपूर्ण नगर में इस छोर से उस ओर तक सनसनी सी फैल गयी। बड़े नगर में बड़ा आदमी बनना जरा कठिन होता है मगर छोटे नगरों में छोटे से छोटा आदमी किसी भी बड़े से बड़े आदमी से कम हैसियत नहीं रखता क्योंकि यदि बड़े आदमी की परिभाषा यह हो कि जिसे चार आदमी जानें तो

वैसे नगरों में सभी सभी को जानते हैं। जानते ही नहीं मानते भी हैं। अतः छोटे नगरों में सब बड़े ही होते हैं, छोटा कोई नहीं होता। ऐसी दशा में सुमन्त की आत्म-हत्या की चेष्टा यदि 'नाटो' और 'सीटो' गुटों की गुप्त बैठक जैसी महत्वपूर्ण मान ली गयी तो अचरज की कोई बात नहीं। यह भी अचरज की बात नहीं कि तत्सम्बन्धी समाचार डबल कालम शीर्षक लगा कर प्रकाशित हुआ और समूचा दो कालम स्थान छेक बैठा। पत्र के नगर संवाददाता ने लिखा था—

आज अपराह्न कोतवाली की पुलिस ने नगर के प्रसिद्ध कवि और कहानीकार सुमन्तजी को आत्म-हत्या की चेष्टा के अपराध में गिरफ्तार किया। पुलिस ने अपनी डायरी में क्या लिखा है, यह अभी मालूम नहीं हो सका है परन्तु सुमन्तजी के पड़ोसियों से पूछताछ करने पर जो पता चला उससे इस घटना पर काफी प्रकाश पड़ता है। कहा जाता है कि आज सवेरे तक सुमन्तजी प्रतिदिन की तरह अपनी मस्त-मौला मुद्रा में ही थे और उन्हें देख कर कोई सन्देह तक नहीं कर सकता था कि उनके मन में इतनी बड़ी दुरभिसन्धि छिपी हुई है। प्रतिदिन की भाँति दोपहर भोजन करने के बाद अपने कमरे में विश्राम करने गये परन्तु प्रतिदिन के विपरीत उन्होंने अपना कमरा भीतर से बन्द कर लिया। दिनके प्रायः दो बजे मनियां धोबिन उनके यहां कपड़े लेने आईं। सुमन्तजी की पत्नी चन्द्रादेवी ने अपने पति के ऊपरी मंजिलवाले कमरे के दरवाजे पर जाकर जब भीतर प्रवेश करना चाहा तो उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि कमरा भीतर से बन्द है। पुकारते-पुकारते थक कर जब उन्होंने दरवाजे की दरार से देखा तो अपने पति को चारों खाने जमीन पर चित पड़ा देख उनके मुँह से चीख निकल गयी। उस आवाज से आकृष्ट होकर

उनकी वृद्धा सास भी आ गयीं और बहू से स्थिति की सूचना पाकर उन्होंने क्रन्दन करना आरम्भ किया। उनके क्रन्दन से सुहले के लोग आकृष्ट हुए और देखते देखते उनके यहां जन समूह उमड़ पड़ा। दर्वाजा खोलने की जब सभी चेष्टाएँ विफल हो गयीं तो उसे चीरने का प्रयत्न किया जाने लगा। इसी बीच किसी ने इसकी सूचना कोतवाली पुलिस को दे दी और दर्वाजा चीरा जाय इसके पहले ही वहां पुलिस पहुँच गयी। पुलिस की उपस्थिति में दर्वाजा चीरा गया। पुलिस ने कमरे में जाकर देखा कि सुमन्तजी जमीन पर चित पड़े हैं। उनके मुंह से फेचकुर निकल रहा है। ओठ काले पड़ गये हैं। घरघराकर सांस तेजी के साथ चल रही है। यह दशा देख पुलिस ने उसी अवस्था में सुमन्तजी को अस्पताल भेज दिया और स्वयं वहां मामले की जांच करने के लिए रुक गयी। कमरे की तलाशी लेने पर पुलिस को एक डोरी छत की कड़ी से बंधी हुई मिली और उसका एक टूटा हुआ टुकड़ा सुमन्तजी की तकिया के नीचे मिला। पड़ोसियों ने पुलिस के सामने जो बयान दिये उनमें भी विरोध है। सुमन्तजी की माता और पत्नी ने तो घटना के कारण की जानकारी से बिलकुल इनकार किया। पड़ोसियों में से कुछ ने यह कहा कि इनकी आर्थिक स्थिति बड़ी ही डांवाडोल है। हो सकता है कि आत्म-हत्या की चेष्टा का यही कारण हो। गृह-स्वामी ने भी, जिसके मकान में सुमन्तजी किरायेदार हैं, इसी बातकी पुष्टि की। उसने कहा कि आज चार महीने से बेकार पड़े रहने के कारण सुमन्त जी मकान का किराया भी नहीं चुका पाये हैं। उसने यह भी स्वीकार किया कि इधर उसने अपने प्राप्य का तकाजा कड़ाई से करना आरंभ किया था और आज सुबह इसी प्रश्न को लेकर उसमें और सुमन्त में कुछ कहा

सुनी भी हो गयी थी। हो सकता है कि उसी ग्लानि में उन्होंने ऐसा किया हो। जैसा कि लोगों के बयान से विदित हुआ है, यदि अर्थाभाव ही आत्महत्या की चेष्टा का कारण हो तो इस पर सिवा यह कहने के और कहा ही क्या जा सकता है कि 'आखिर इस दर्द की दवा क्या है ?'

उक्त समाचार का पाठ महलों में भी हुआ और भोपड़ियों में भी। नदी किनारे भी, तमोली की दूकान पर भी। गली के नुक्कड़ पर भी, चौराहे पर भी। महलों में कहा गया—गदाई है। जीवन-युद्ध का भगोड़ा।

भोपड़ियों में रहने वालों ने वह समाचार पढ़ा तो वे एक दूसरे की ओर देख और एक लम्बी साँस भर कर अपना-अपना सिर नीचा करके बैठ गये। नदी किनारे वालों ने एक स्वर से घोषणा कर दी कि प्राण भगवान की दी हुई चीज है। उसे भगवान ही जब चाहे तब ले सकता है। उसी प्राण को असमय ही गँवाने की चेष्टा पाप है—महापाप ! ननकू तमोली की

कान पर बड़कू साव ने आठ बीड़ा मगही पान एक साथ अपने मुँह में डालकर और उसे अपनी जीभ की सहायता से बराबर-बराबर दोनों गालों की ओर विभाजित करते हुए ब्रह्म-ज्ञानी के स्वर में कहा—'आया है सो जायगा राजा रंक फकीर ।'

पुलिस ने अपनी डायरी में लिखा कि सुमन्त काफी पढ़ा लिखा आदमी है। उसने एम० ए० पास किया है लेकिन सुभाव से ही आवारा होने की वजह से उसने कहीं भी अब तक जमकर नौकरी नहीं की। इसी वजह से उसकी माली हालत बहुत पतली है। पैसा ऐसी चीज है कि जब वह पास नहीं रहता तो अगर आदमी कलेजे का मजबूत हुआ तो दूसरों की हत्या करत। और अगर कमजोर दिल का हुआ तो आत्म-हत्या करता है।

सुमन्त इसी दूसरी श्रेणी का आदमी जान पड़ता है। उसके कमरे में छत की कड़ी से लटकती हुई एक डोर भी पाई गयी जिसका एक टुकड़ा सुमन्त की तकिये के नीचे से बरामद हुआ है। इससे साफ जाहिर है कि मुलजिम पहले तो फाँसी लगाकर खुदकुशी करना चाहता है मगर दिल कमजोर होने की वजह से ऐसा करने की हिम्मत न कर सका। मालूम होता है कि इसके बाद अफीम या इसी किस्म की कोई चीज खाकर उसने अपनी जान दे देना चाहा है। पहले फाँसी लगाने के लिए डोरी मुहैया करना और बाद में कोई जहरीली चीज तलाश कर खा लेना भी यही बताता है कि जुर्म किसी प्रकार के तैश में नहीं हुआ है बल्कि अभियुक्त ने खूब सोच-विचार कर आत्म-हत्या करने की चेष्टा की है। उसने कौन-सा जहर खाया है, इसका पता तो डाक्टर की रिपोर्ट मिलने के बाद ही चल सकता है मगर इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह आत्म-हत्या के प्रयत्न का बहुत साफ मामला है।

घाट पर सुमन्त की आत्म-हत्या करने की चेष्टा का समाचार सुनकर अन्तू धोबी गदहे की पीठ पर लादी लाद और उस लादी को अपनी गादी बना कर और उसपर सवार होकर जब अपने घर वापस आया तो उसका पत्नी मनियाँ ने उसे कुछ और ही समाचार सुनाया।

अन्तू सुमन्त को जानता था। जानता ही नहीं था, मानता भी था क्योंकि सुमन्त का अभिमान-रहित स्वभाव उसे पसन्द था और उसका प्रेमल आचरण उसे वशीभूत किये हुए था। उसने जब से सुमन्त के बारे में सुना था तभी से वह दुखी था। अतः घर आकर उसने प्रतिदिन की तरह मनियाँ को गाली देते हुए उससे हुक्का नहीं माँगा। हुक्का लाने में मिनट भर की

जगह घंटे भर की देर हो जाने पर उसका भोंटा पकड़ कर जोर-दार झटका नहीं दिया। सबसे बड़ी बात यह हुई कि कोई न कोई बहाना बना कर उसने उस दिन मनियाँ को पीटा नहीं।

मनियाँ को आज अपने प्यारे पति के हाथों पिटने की पूरी-पूरी आशा थी क्योंकि जब से वह सुमन्त के घर से लौट कर आयी थी तभी से गुम सुम बैठी थी। वह सुमन्त के घर में पुलिस को आते और सुमन्त को अस्पताल ले जाते अपनी आँखों देख आयी थी। उसका विश्वास था कि वही मर्द आत्म-हत्या करता है जिसकी निगाह अपनी पत्नी से हट कर किसी दूसरी नारी के रूप से सट जाती है और वही औरत आत्महत्या करती है जिसे अपने पति का प्यार प्राप्त नहीं रहता।

प्यार की परिभाषा और उसके लक्षण के सम्बन्ध में भी मनियाँ के निजी मौलिक विचार थे। उसके अनुभव ने उसे बताया था कि आदमी उसी पर निर्मम प्रहार करता है जिसे वह वस्तुतः प्यार करता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर वह यह माने बैठी थी कि उसका अन्तू उसे जितना प्यार करता है उतना प्यार कोई भी अपनी पत्नी को नहीं करता—नहीं कर सकता। उसने अपने कान से सुना था कि सुमन्त बाबू ने चन्द्रा पर हाथ छोड़ दिया था और उसी समय वह यह जान कर पुलकित हो उठी थी कि जैसे उसका अन्तू उसे प्यार करता है हू-ब-हू वैसे ही सुमन्त बाबू भी चन्द्रा बीबी जी को प्यार करते हैं और जो अपनी स्त्री को प्यार करता है वह दूसरी पत्नी को प्यार की निगाह से देख ही नहीं सकता। मनियाँ यही सोच कर परेशान थी कि तब सुमन्त बाबू ने जान देने की चेष्टा क्यों की। और जब अन्तू ने आकर न उसे झटकारा न फटकारा बल्कि गुमसुम हो बना रहा तो उसकी परेशानी और भी बढ़ गयी। उसका

मन आशंका से भर उठा कि कहीं मुझपर अन्तू का प्यार कम तो नहीं हो गया। अन्तू के घर बैठे मनियाँ को तीन वर्ष हो गये परन्तु ऐसा तो कभी न हुआ कि अन्तू शाम को घाट से आये और मनियाँ की खड़े घाट पिटाई न करे।

उधर घाट पर ही सुमन्त सम्बन्धी समाचार पा जाने के कारण प्रतिदिन की तरह घर लौटते समय अन्तू हौली की हवा खाने नहीं जा सका था और अपने दैनिक चिखने और कुल्हड़ से वंचित रह जाने के कारण और भी मन मलीन तनछीन हो रहा था। जब मनियाँ ने उसे बताया कि आज सुमन्त बाबू ने चन्द्रा बीबी पर हाथ चला दिया था और जब मैं कपड़ा लेने गयी तो उस समय वह रो रही थीं और जब सुमन्त बाबू के कमरे में वे कपड़ा लेने गयीं तब उनके जहर खाने की बात मालूम हुई तो अन्तू चौंका और बोला—तो यह बात है। लेकिन यह तू मूठ कहती है कि सुमन्त बाबू ने बीबीजी पर हाथ चलाया। अगर वह हाथ चलाते तो खुद जहर क्यों खाते। असली बात यह है कि बीबीजी ने ही बाबू पर हाथ छोड़ दिया होगा और इसलिए बाबू ने जहर खा लिया।

‘लेकिन तुम तो मुझे रोज ही मारते हो मैं तो जहर नहीं खाती।’—मनियाँ ने कहाँ।

‘इसीलिए तो कहता हूँ रे, कि बाबू ने नहीं, बीबी जी ने ही मारपीट की होगी। औरत का हाथ चलाना मरद क्या कभी सह सकता है।’—अपनी विज्ञता प्रदर्शित करते हुए अन्तू ने जवाब दिया।

चिहुँकते हुए मनियाँ ने उससे पूछा—तो अगर कभी मैं तुम्हारे ऊपर हाथ छोड़ दूँ तो क्या तुम भी जहर खा कर मर जाओगे।

—हम काहे को मरें रे । हम भी क्या बाबू भैया लोग हैं । तू मुझपर हाथ चलाये तो पहले तो तेरा हाथ ही तोड़ दूँ । उसके बाद तेरी कुट्टी-कुट्टी करके एक गठरी में बाँध दूँ और अपने गद्दे पर लाद कर नदी किनारे ले जाकर मछलियों को खिला दूँ ।—अन्तू ने अपने परुष कंठ से अपना पौरुष प्रकट किया । मनियाँ ने मन ही मन प्रतिज्ञा कि वह स्वयं चाहे अन्तू के हाथों पिटते पिटते मर ही क्यों न जाय मगर अन्तू पर हाथ चलाना क्या, वह कभी उसे चिकोटी तक काटने का दुस्साहस न करेगी ।

घर के एक कोने में बैठी हुई चन्द्रा अपनी किस्मत को रो रही थी । वह अपढ़ तरुणी अपने सुशिक्षित स्वामी को देवता ही समझती थी और उसके प्रति वैसी ही भक्ति भी रखती थी । परन्तु सुमन्त को यह कभी न मालूम हो सका कि चन्द्रा के मनमें उसके प्रति कितना गम्भीर अनुराग है । वह उस पथिक की तरह हौफते हुए बहुत दूर दिखाई देने वाली नदी की क्षीण धारा की ओर दौड़ा जा रहा था जिसके पैरों के नीचे और भूमि के भीतर हाथ भर गहराई में ही अन्तःसलिला की धारा प्रवाहित हो रही हो । अर्थाभाव से अत्यन्त पीड़ित होने पर भी वह अपने पति को पैसे के लिए भरसक परेशान न करती । प्रति क्षण बाट जोहती रहती कि सुमन्त के मुँह से कोई आदेश निकले और वह तत्काल उसका पालन करे । इन्हीं कारणों से सुमन्त उसे अपनी प्रेमिका न मानकर दासी मात्र जानता था ।

चन्द्रा को रह रह कर पछतावा हो रहा था कि मैंने आज उनसे यह जानने का दुराग्रह क्यों किया कि चिट्ठी कहाँ से आई है । वह सोच रही थी कि न मैं यह दुराग्रह करती न वे क्रोध में आकर मुझे ढकेलते । गिरते-गिरते संभलने में न मैं अलगनी की रस्सी पकड़ती और न वह टूटती । यदि टूटी हुई रस्सी न मिलती

तो पुलिस यह सन्देह न कर सकती कि उन्होंने फाँसी लगाकर आत्म-हत्या करने का विचार किया था। लेकिन उन्होंने जहर खाया तो क्यों ? क्या कारण है कि मैं उन्हें इतना प्यार करती हूँ, फिर भी वे मेरे प्रेम का कोई मूल्य नहीं समझते ।

चद्रा के मनमें उक्त विचार चल रहे थे और उसी समय जैसे उसके विचारों की डौँडी पीटता हुआ एक युवक मैटिनी शो में 'मित्रा गालिब' फिल्म देखकर उसकी खिड़की के नीचे से गुजरते हुए गरज उठा—

‘हम हैं मुश्ताक और वो बेजार,
या इलाही ! ये माजरा क्या है ?’

ठीक उसी समय होश में आया हुआ सुमन्त पुलिस के समक्ष बयान दे रहा था कि अर्थाभाव और बेकारी के कारण इधर कई दिनों से मुझे रात-रात भर नींद नहीं आती। फलतः मैं अपने एक चिकित्सक मित्र के यहाँ से नींद की गोलियाँ ले आया। घर लौटते ही मुझे बम्बई से एक पत्र मिला जिसमें एक समाचार-पत्र के कार्यालय में मेरी नियुक्ति की सूचना थी। मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। पत्र पाते ही मुझे चिन्ता हुई कि मैं बम्बई तक जाऊँ भी तो कैसे क्योंकि रेलगाड़ी का भाड़ा चुकाने भर भी पैसा मेरे पास नहीं है। उधर मेरी पत्नी मेरे पास पत्र आया हुआ देख आशान्वित हो उठी कि कहीं पुनः मेरा काम लग गया। वह बार-बार मुझसे पूछने लगी कि पत्र कहाँ से आया है। मैं जानता था कि बम्बई न जा सकूँगा अतः बेचारी को नियुक्ति की बात बता कर व्यर्थ ही चिन्तित क्यों करूँ। इसीलिए मैंने उसके हठ पर कुछ रोष में आकर उसे एक धक्का दिया। यदि वह अलगनी की डोरी न थाम लेती तो गिर जाती और बहुत चोट

खाती। उसके भटके से डोरी टूट गयी और वह चुपचाप रोती ई वहाँ से चली गयी। मुझे अपने व्यवहार पर बड़ा दुःख हुआ। मैं पागल सा हो उठा। अनाहार अनिद्रा और चिन्ता से परेशान होकर मैंने नींद लाने वाली चार गोलियाँ एक साथ खा लीं कि कजबत बेहोश पड़ा रहूँगा तब तक चिन्ता से तो छुटकारा मिल जायगा। मैंने जहर नहीं खाया है।

बयान लिखते-लिखते सब इन्स्पेक्टर नूरुलहुदा ने सिविल सर्जन की ओर देखा और सर्जन ने इशारे से ही सुमन्त के अन्तिम वाक्य का समर्थन किया। सुमन्त कहता गया—मैं बहुत दिनों से चाहता था कि जो चिन्ता भीतर ही भीतर मुझे खाये डाल रही है उसका परिचय दुनिया को भी मिले। वह जान जाय कि वह समाज कितने दिनों ठहरा रहेगा जिसमें मेरे जैसे सत्तम व्यक्ति को भी जीविका के लाले पड़े रहते हैं। आज मौका मिला है तो कह रहा हूँ।

दारोगा ने चलती हुई कलम रोककर मुस्कराते हुए पूछा—
तो कहिये आपके बयान के आखीर में लिख दूँ—

‘मैं भी मुँह में जबान रखता हूँ,
काश पूछो कि मुद्दा क्या है।’

‘लिखिये, लिखिये, जरूर लिखिये। जब जस्टिस महमूद अपने अंग्रेजी में लिखे हुए फैसले में अमीर मीनाई का शेर उद्धृत कर सकते हैं तो आप भी मेरे हिन्दी बयान में मिर्जा गालिब का शेर लिख सकते हैं।’—सुमन्त ने आवेश के साथ कहा।

दारोगा ने कुरसी से उठते-उठते पूछा—हाईकोर्ट के फैसले में कौन सा शेर लिखा गया था भाई !

करवट बदलते हुए कराह भरे स्वर में सुमन्त ने कहा—

‘करीब है यार रोजे मशहर,
छिपेगा कुश्तों का खून क्योंकर,
जो चुप रहेगी जुबाने खंजर,
लहू पुकारेगा आस्ती का ॥

न किसी की आँख का नूर हैं

सावित्री की माँ का नाम सावित्री की माँ के अतिरिक्त कुछ और भी है, यह कोई नहीं जानता—स्वयं मकान मालिक तक नहीं। ईसा की बीसवीं शताब्दी में इतना बड़ा चमत्कार कैसे सम्भव हुआ, यह भी कोई नहीं जानता क्योंकि सरखत में भी उसका यही नाम दर्ज है और वर्तमान मकान-मालिक के पिता ने सरखत में उसका असल नाम न लिख कर सावित्री की माँ क्यों लिखा यह भी कोई नहीं जानता। मकान की कोठरियों में किराये पर रहने वाले अन्य किराये दार जितना मकान

मालिक से नहीं डरते उतना सावित्री की माँ से डरते हैं। क्यों डरते हैं, यह भी कोई नहीं जानता। मकान-मालिक भी नहीं जानते कि वे सावित्री की माँ से क्यों भयभीत रहते हैं। परन्तु सावित्री की माँ है कि वह उक्त सभी प्रश्नों का सही उत्तर जानती है। अन्तिम दो प्रश्नों का उत्तर तो उसकी जीभ पर रहता है। वह खूब जानती है कि जब उसकी जबान की कैंची चलती है तो बड़े बड़ों की बखिया उधड़ जाती है। अतः वह जानती है कि कोई भी हथियार हो यदि उसका सतत उपयोग होता रहे तो वह आबदार बना रहता है, अन्यथा जंग लग जाता है। फलतः वह चरखे के साथ जबान चलाना भी जारी रखती है। मगर आज उसे सर्वथा मौन देखकर सारा घर थर-थर कर रहा है जैसे रेलगाड़ी की घरघराहट तो बाद सुनायी पड़ती है परन्तु रेल की पटरी में थरथराहट पहले ही शुरू हो जाती है। अतः सबका मन इस आशंका से भर रहा था कि यह कोई भीषण तूफान आने की पूर्व सूचना है।

घर में छाये हुए इस अभूतपूर्व सन्नाटे में सावित्री की माँ इस बात पर गौर कर रही थी कि इस मकान में रहने वालों में आज तक अर्थात् जब से सावित्री की माँ इस घर में आई है तब से किस की हांडी में क्या पका है इसकी खबर उसे अनायास लगती रही है परन्तु सुमन्त के पास जो यह पछत्तर रुपयों का मनीआर्डर आया तो कहाँ से, किसने भेजा और क्यों भेजा ? रात भर ठीक उसके सिर पर सुमन्त के रहनेवाले हिस्से में जो खटर-पटर होती रही है तो क्यों।

शहर के अंदरों में काजी जी के दुबले होने वाली कहावत चरितार्थ करती हुई बेचारी सावित्री की माँ जब समस्या का कोई कूल किनारा न कर पायी तब उसके लिए यह आवश्यक हो गया

वह अपना मौन भंग करे और किसी वीतराग संन्यासी की भाँति मानापमान की चिन्ता छोड़ एक मंजिल ऊपर सुमन्त की माँ या पत्नी के पास जाय और उससे टोह लेकर अपनी जिज्ञासा की पूर्ति करे। परन्तु —

परन्तु सावित्री की माँ को सहसा स्मरण पड़ा कि विष-पान की तथोक्त घटना वाले दिन से ही उससे सुमन्त की माँ और पत्नी ने बोलचाल छोड़ दी है क्योंकि उसीने उस दिन मनियाँ धोबिन से कहा था कि चन्द्रा को सुमन्त ने मारा है, मगर किसी से कहना मत। मेरी लड़की सावित्री ने अपनी आँखों देखा है। पटक-पटक कर मार रहा था। कहने को तो इत्ता पढ़ा लिखा आदमी, लेकिन करनी ऐसी खराब। राम-राम, भला अपनी बहू को कोई इस तरह मारे है! मेरी सावित्री के बाप ने एक बार मुझे हलकी सी चपत लगा दी तो मैंने उस दिन से आज तक उस भलेमानस का मुँह नहीं देखा।

सावित्री ने जो अपनी माँ का यह आविष्कार सुना तो वह चुपके चुपके महेश की मौसी, सुरेश की चाची और नरेश की नानी के कानों में यह शुभ समाचार दे आयी। बात एक जवान से दो कानों में जहाँ गई वहाँ उसे दो से चार-चार से आठ और आठ से सोलह कानों में गूँजते देर नहीं लगती। इस पद्धति का तर्क-सम्मत परिणाम यही हुआ कि दो घंटे के भीतर ही सुमन्त की माँ ने यह सुन लिया और घटना की नायिका चन्द्रा ने भी। फल यह हुआ कि जब सुमन्त अस्पताल से घर वापस आया तो अपनी माँ के आदेश से सभी पड़ोसियों के पास जा-जाकर उनकी सहानुभूति के लिए कृतज्ञता प्रकट कर आया। परन्तु सावित्री की माँ और स्वयं सावित्री को सामने देखकर भी उनसे कुछ न बोला। उसके इस आचरण पर सावित्री

मुँह फेर कर मुस्कराई थी और उसकी माँ ने नाक सिकोड़कर मुँह बना लिया था ।

सावित्री की माँ ने ऊपर चढ़ने के लिए पहली सीढ़ी पर पैर रखा और सुमन्त की उस दिन की मुख-मुद्रा का ध्यान आते ही सीढ़ी पर रखा हुआ पैर उतार लिया और सावित्री को पुकारती हुई अपने कमरे में आ गयी ।

उस समय सावित्री एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काम में लगी हुई थी । दो राष्ट्रों के पारम्परिक युद्ध काल में जो काम करने पर लोग गोली से उड़ा दिये जाते हैं और शान्ति काल में भी लम्बी सजा पाते हैं वही काम सावित्री अत्यन्त निर्भय हो कर रही थी । अपनी और सुमन्त की छत को जोड़नेवाली सिल्लीपर बन्दर के बच्चे को तरह चपकी हुई वह सुमन्त के कमरे की काठ से बनी दीवार की दरार में आँख लगाये तन्मयता के साथ भीतर देख और सुन रही थी । उसने घर में ऐसी एक भी कोठरी न छोड़ी थी जिसके भीतर सबसे छिपकर देखने का कोई न कोई स्थान उसने न तजबीज लिया हो । वह देख रही थी कि चन्द्रा पति के फटे पुराने कपड़ों और बिस्तर आदि का बंडल बना रही है । उसकी आँखों से रह-रह कर आंसू की बूंदें टपक पड़ती हैं जिन्हें वह जल्दी से अपनी आँचल से पोंछ लेती है जिसमें उसकी सास या पति को न मालूम हो सके ।

सावित्री ने यह भी देखा कि सुमन्त बहुत उदास-सा तीन पैर की पलंग पर, जिसमें एक पैर की पूर्ति ईंटों से की गयी है और जिस पर से बिस्तर उतर कर बंडल में बंध चुका है, बैठा है और जमीन पर बैठी हुई उसकी माँ कह रही है कि बेटा परदेस मरदों के ही लिए होता है । फिर यह कोई पहली बार तो तुम परदेस जा नहीं रहे हो । जनम से बाहर ही बाहर रहे

हो । फिर क्या चिन्ता । ये जो पछत्तर रुपये आये हैं इनमें से पन्द्रह रुपये तो तुम एक महीने के खर्च के लिए घर रख जाओ । आठ रुपये मकान मालिक को देकर पिछले चार महीनों का किराया चुकता कर दो । बाकी कित्ते बचे ? पन्द्रह और चार रन्नीस । उन्नीस को बीस समझ लो । पछत्तर रुपये में तीन बीसी, एक दस और एक पाँच रुपया होता है न ? सो एक बीसी निकल गयी । दो बीसी और-और पन्द्रह रुपये बच गये । पन्द्रह में भी एक कम कर दो तो दो बीसी माने चालीस और चौदह रुपये तुम्हारे पास बचे । परदेस का वास्ता है इसलिए इत्ते रुपये तुम्हीं ले जाओ ।

सुमन्त गुमसुम माता की बातें सुनता रहा । उसने कोई उत्तर न दिया । उसकी माँ ने ही उससे फिर कहा-बहू ने तुम्हें जो जन्तर दिया, उसे जतन से रखना । हमेशा अपने दाहिने हाथ पर बाँधे रहना । क्यों बहू, जन्तर दे दिया न ।

बहू ने धीरे से जवाब दिया—अभी नहीं । बहुत खोजने पर भी नहीं मिला ।

बुढ़िया ने झल्ला कर कहा-अभी से तुम लोगों की यह दशा है । मेरे बाद तुम लोग क्या करोगे यह भगवान ही जाने । मैंने तो कह दिया था न कि मेरी पिटारी में जन्तर ऊपर ही रखा हुआ है । वह भी तुम्हें न मिला । अब मैं ही जाती हूँ ।

बुढ़िया कमरे से बाहर निकली । ठीक उसी समय सावित्री की माँ ने आवाज दी - साबी, साबी, अरी सबिया ! कहाँ मर गयी ।

सबिया को सचमुच इस समय मरण कष्ट हुआ । यही तो मौका था जब कि असल बात उसे मालूम होती । कमरे में सुमन्त और चन्द्रा ही रह गये थे । इस समय माँ की पुकार सावित्री

को तनिक न सुहायी। बेचारी वहाँ बोल भी नहीं सकती थी और न बोलने पर यह भी जानती थी कि माँ उसे खोजती हुई यहाँ तक तुरत आ जायगी। अतः उसे यही मान लेना उचित प्रतीत हुआ कि जल्दी से जल्दी जितनी बातें इस समय सुन लीं उतनी ही काफी हैं।

सावित्री अपनी छत पर आने के लिए घूमी ही थी कि उसके कानों से आवाज आयी—चन्द्रा ! अब तो प्रसन्न हो न कि मैं बेकार नहीं रहा

और सावित्री ने अपनी आँख पुनः दरार से भिड़ा दी। उसने देखा कि सावित्री ने मुँह फेर कर अपनी आँखें पुनः पोंछ दी हैं और पति के सामने अपना मुस्कराता हुआ चेहरा फेर कर वह कह रही है।

—अगर उसी दिन बता देते कि चिट्ठी में क्या लिखा है तो इतना हल्ला क्यों मचता।

—तुम्हारे ही कहने पर तो मैंने चित्रा देवी को लिख दिया कि मैं इतना दरिद्र हूँ कि जब तक आप मेरी तनखाह में से पेशगी पछत्तर रुपये न भेज देंगी तब तक मैं बम्बई न आ पाऊँगा।

—तो इसमें लज्जा की क्या बात है। अगर मालिक को अपने नौकर की हैसियत मालूम रहे तो यह अच्छा ही है। अरे, बंडल में तौलिया रखना तो भूल ही गयी। अच्छा अभी लेती आती हूँ।

चन्द्रा जल्दी से कमरे के बाहर निकली और जिन आसुओं की धारा को उसने बल पूर्वक अभी तक बड़ी कठिनाई के साथ रोक रखा था वह भी उसके धैर्य का बाँध तोड़ कर उसकी आँखों से निकल पड़ी। चन्द्रा छत पर खड़ी रोने लगी। इस तथ्य से

अनभिज्ञ सुमन्त के मन का भाव उसकी बाणी में मूर्त हो उठा । वह स्वगत भाषण के तौर पर बोल उठा—सभी धन के साथी हैं, तन और मन का साथी कोई नहीं ।

सावित्री के कौतूहल को तृप्ति प्राप्त हो गयी । अब वह खुशी-खुशी माँ के पास जाने को तैयार थी त्यों ही उसने सुना कि नरेश उसकी माँ से कह रहा है—चाची, सावित्री तो मेरी नानी के पास बैठी चिमटी से उसकी आँखों की बरौनी निकाल रही है । जल्दी हो तो अभी बुला लाऊँ ।

नहीं रे कोई जल्दी नहीं है—सावित्री की माँ ने कहा । नरेश सावित्री की माँ से यह आश्वासन पाकर इधर-उधर देखता हुआ छत पर आया । उसी समय नीचे से सुरेश की चाची का चीत्कार सुनाई पड़ा । चौबीस घंटों में कभी न कभी किसी की चीख का सुनाई पड़ जाना इस घर का दैनिक नियम था । अतः उस पर न नरेश ने ध्यान दिया और न सावित्री ने । दोनों ने इतना अवश्य सुना कि सावित्री की माँ कह रही है—क्या हुआ रे ? अभी उस दिन तो बुढ़िया मरी है, आज कोई फिर मर गया क्या ?

पन्द्रह दिन पूर्व सुरेश के बाप और चाचा की वृद्धा मामी का देहान्त हुआ है । विधवा होने पर वृद्धा मामी अपने भानजों के आश्रय में आ गयी थी । भानजों ने भी सपत्नीक उसकी सेवा करने में होड़ लगा दी क्योंकि यह प्रसिद्ध था कि मामी के पास सोलह तोले सोने का हार है । मामी भी जब तक जीवित रहीं एक छोटी सन्दूकची को इस प्रकार बगल में दबाये फिरती रही जैसे बिल्ली अपने बच्चे को दबाये फिरती रहती है । सभी जानते थे कि उस सन्दूकची में सोने का महार्घ हार है । बुढ़िया भी समय-समय पर कह दिया करती थी कि मेरे दो भानजे हैं

और दो भनेज बहू । जो अन्त समय मेरे काम आयेगा उसी को यह सन्दूक दे जाऊँगी । अगर दोनों ने मेरी सेवा की तो दोनों को दे दूँगी कि बाट लें ।

आज उसके दोनों भानजों और भनेज बहूओं की उपस्थिति में वह सन्दूकची खोली गयी तो उसमें गणेशजी की एक टूटी औंधी मूर्ति के सिवा और कुछ न मिला । यही देख कर सुरेश की चाची चीत्कार कर उठी थी, उसकी मा ने सिर पीट लिया था और उसके बाप और चाचा एक दूसरे की ओर भेंप भरी मुद्रा में खड़े देख रहे थे । पड़ोसियों का समूह अपने-अपने घरों से निकल कर सुरेश की दालान में एकत्र हो गया था और सभी अपने-अपने ढंग से सुरेश की माँ और चाची को उसी प्रकार सान्त्वना दे रहे थे जैसे पन्द्रह दिन पहले मामी की मृत्यु पर पागल हो जाने का अभिनय करनेवाले सुरेश के बाप और चाचा को उन लोगों ने समझाया था । परन्तु सुरेश की चाची का चीत्कार और पड़ोसियों की सहानुभूति भरी वाणी सभी को दबाकर सावित्री की माँ की आवाज सुनाई पड़ रही थी—तुम लोग भाई चाहे जो कहो, बुढ़िया का इसमें कोई कसूर नहीं है । उसका मालिक वकील था न । यह सारी कारस्तानी उसी की है । वही बुढ़िया को सिखा गया होगा कि मेरे बाद अगर तकलीफ हो तो हार का बहाना बना कर भानजों के सिर जा पड़ना । फिर वह बेचारी करती भी तो क्या । मालिक के मरते ही भतीजों ने बेचारी को निकाल दिया और तुम लोग तो जानते ही हो कि सीधी अंगुली घी कभी नहीं निकले है । अगर बुढ़िया खुल्ल आती तो भानजे बात न पूछते और भनेज बहू झाड़ू मार कर उसका भूत भगा देती । सो बेचारी ने यही बहाना बनाया कि मेरे पास सोने का हार है । बस जब तक जीती

रही सब सुसरखा करते रहे। बेचारी ठंडे-ठंडे चली गयी।
अच्छा हुआ।

सावित्री की माँ का भाषण अपने पूरे बेग से चल रहा था मगर इतने बड़े घर में कुल पाँच प्राणी ऐसे थे जिनकी उसमें कतई दिलचस्पी न थी। वे पाँचों थे—सुमन्त, सुमन्त की माँ, चन्द्रा, सावित्री और नरेश। सुमन्त परिवार को तो सावित्री की माँ की बातों में कभी दिलचस्पी थी ही नहीं। उधर इस समय नरेश की दिलचस्पी सावित्री में और सावित्री की दिलचस्पी नरेश में थी। उसने छत पर आते ही दोनों छतों की दीवार के बीच खड़ी सावित्री को देख लिया था और स्वयं भी वहाँ पहुँच गया था।

सावित्री ने नरेश को देखते ही कहा था—तू यहाँ क्यों आ गया।

नरेश भी सवाल किया—मैं तुझसे पूछता हूँ कि तू यहाँ क्यों आयी और इस दीवार से लग कर क्या देख रही थी।

‘तुझसे मतलब मैं क्या देख रही थी’—शोख सावित्री ने कहा। ‘भला कोई इससे पूछे तो कि दीवार में क्या दिखाई पड़ेगा। इसका सिर।’

नरेश ने हँस कर कहा—देख साबी, तुझसे तो उड़ मत। जानती है इस काठ की दीवार में दरार किसने बनाई है जिसमें तूने आँखें लगा रखी थी। इसी नरेश चंद्र शर्मा ने।

‘तू तो बड़ा वो है रे। मैं तुझसे अब कभी न बोलूँगी’—सत्रह वर्षीया सावित्री ने अठारह साल के तरुण नरेश के गले में बाँहें डाल कर मूलते हुए कहा।

सिनमा के खेल-नायकोंवाली मुद्रा से मटकते हुए नरेश ने कहा—तू तो मुझसे प्रेम करती है न। तब कैसे न बोलेंगी।

सावित्री ने जवाब दिया—मैंने तुझसे कब कहा कि मैं तुझसे प्रेम करती हूँ । प्रेम तो उसी से होता है जिससे ब्याह हो जाय ।

‘उलटी बात कहती है सावित्री’, नरेश ने कहा—‘ब्याह उसी से हो जाता है जिससे प्रेम हो जाय ।’

--तो क्या तू मुझसे ब्याह करेगा कि मैं तुझसे प्रेम करूँ ?

--तेरी माँ क्या मुझसे तेरा ब्याह करने के लिये राजी होगी । कभी नहीं । जात-पाँत का भगड़ा जो ठहरा ।

—इसीलिए तो मैं तुझसे प्रेम नहीं करती । माँ ने मुझे बता दिया है कि प्रेम उसी से हो सकता है जिससे ब्याह हो और जो परेम फरेम की बातें हैं सब फजूल हैं ।

उसी समय सुमन्त ने एक हाथ से बिस्तर का बंडल और दूसरे हाथ में छोटा-सा टोन का एक बक्स उठाया । उसने एक बार अपनी माँ की ओर देखा और दूसरी बार अपनी पत्नी की ओर । माँ ने सिर नीचा कर लिया, पत्नी ने मुँह फेर लिया । सुमन्त लम्बी साँस ले कर बोला जा रहा हूँ माँ, प्रणाम ।

वह धीरे-धीरे सीढ़ी उतरने लगा ।

सहसा दालान में सामने पड़ी हुई अपनी मामी की सन्दूकची को सुरेश के चाचा ने कस कर ठोकर लगायी । सन्दूकची छटक कर दूर जा गिरी । गणेशजी की टूटी मूर्ति दीवार से टकरा कर टुकड़े टुकड़े हो गयी । सन्दूकची उलटने से उसमें से कागज का एक टुकड़ा जमीन पर गिरा । सुरेश के बाप ने उसे उठाकर पढ़ा—‘न किसी की आँख का नूर हूँ, न किसी के दिल का करार हूँ।’

सावित्री को माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी । बोली—मैं तो पहले ही कहती थी कि यह कारस्तानी बुढ़िया के मालिक की है । वह बकील था न । यह सैर वही लिख गया है ।

छत पर सावित्री की आँखों में आँखें डालते हुए जैसे निराश नायक का अभिनय कर रहा हो वैसे नरेश गुनगुनाया 'न किसी की आँख का नूर हूँ न किसी के दिल का करार हूँ।'

सीढ़ी उतरते-उतरते सुमन्त ने एक बार पुनः अपनी माँ की ओर देखा।

सुरेश का पिता अपनी मामी का पुरजा पढ़ रहा था—'न किसी की आँख का नूर हूँ।'

सुमन्त ने अपनी पत्नी की ओर देखा।

छत पर नरेश सावित्री से मुस्कराते हुए कह रहा था—न किसी के दिल का करार हूँ और सुमन्त का रोम-रोम जैसे क्रन्दन कर उठा 'न किसी की आँख का नूर हूँ, न किसी के दिल का करार हूँ।'

नाजबाले नियाज क्या जानें

जिस समय सुधीरा ने चित्रा के सामने छोटी-सी तिपाई रख कर उस पर चाय का सामान सजा दिया और स्वयं वहाँ से हट जाने की मुद्रा में दरवाजे की ओर चली तो चित्रा ने उसे पुकार कर पूछा—मैं समझती हूँ सुधीरा, कि शायद तुम्हें फिर महीने भर की छुट्टी जल्दी ही लेनी पड़ेगी ।

मालकिन की पहली ही आवाज पर सुधीरा जाते-जाते घूम पड़ी थी । प्रसव काल समीप आ जाने के कारण उसका उदर-प्रदेश भड़ा और स्फीत दिखाई दे रहा था ।

चाय के प्याले में चीनी और दूध चम्मच से घोलती हुई सुधीरा के पेट पर नजर जमाये मुस्कराते हुए चित्रा सुधीरा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी ।

स्वामिनी के प्रश्न पर सुधीरा के वर्ण की श्यामता जरा गहरी हो गयी । उसने उत्तर न दिया और चुपचाप खड़ी रही । चित्रा ने ही पुनः कहा लेकिन एक बात बताये देती हूँ । इतनी जल्दी-जल्दी तुम्हें बच्चे होंगे तो मैं बार-बार यानी साल में दो बार महीने महीने भर छुट्टी न दे सकूँगी । देश भर में फैमिली प्लानिङ्ग का आन्दोलन चल रहा है और तुम्हारे जैसे लोग दो बच्चे प्रति वर्ष पैदा कर सरकार की सारी योजनाओं पर पानी फेर रहे हैं । और, फिर इस तरह तू कितने दिन जिएगी । तेरा पति तेरा दुश्मन है क्या ?

सुधीरा मालकिन की बातें सुन-सुन कर खौलते तेल में पड़े हुए पापड़ की तरह लज्जा से चुरचुरे होकर लाल हुई जा रही थी, मगर चित्रा का अन्तिम वाक्य सुन कर वह उसी पापड़ की रह जल भी उठी जो ठीक वक्त पर कढ़ाई से निकाला नहीं जाता । उसने दबी जबान से कहा—

—‘वह दुश्मन काहे होने लगे । बात यह है वाई साब कि वह मुझसे बहुत प्रेम करते हैं ।

—प्रेम करते हैं ? चित्रा ने जैसे अपने कानों पर विश्वास न करते हुए पूछा ।

—जी हाँ । नहीं तो इतने बच्चे कैसे पैदा होते । जो अपनी पत्नी से प्रेम नहीं करते वे बाहर-बाहर घूमते हैं । इसीलिये निस्सन्तान रहते हैं ।

सोफा पर बैठी हुई चित्रा मारे हँसी के दोहरी हो उठी । जब हँसी कुछ थमी तो बोली—यह तो तूने बड़े तमाशे की बात

सुनाई सुधीरा । दुनियाँ जानती है कि प्रेम मन-बहलाव की चीज है और तू कहती है कि उससे बच्चे पैदा होते हैं ।

चित्रा फिर हँसने लगी । सुधीरा ने उसी संयत भाव से कहा—मन बहलाने के लिए तो सिनेमा, नाटक, सर्कस, रेस, नाचना-गाना वगैरह होता है बाई साब !

—अच्छा-अच्छा अपना ज्ञान रहने दे । और यह सब सामान उठा ले जा ।

सुधीरा 'ट्रे' लेकर बाहर चली गयी । सोफा पर अधलेटी चित्रा मन बहलाव करने के लिए आज कौन-सा प्रेम का शिकार उपयुक्त होगा इस पर विचार करने लगी ।

सामने दीवार पर टँगी घड़ी ने टनटना कर सात बजाया ।

ठीक सायं सात बजे कार्यालय आकर सुमन्त अपनी मेज पर जिस समय गुट्टक के नीचे दबी हुई प्रधान सम्पादक के आदेशों की तालिका पाई तभी उसे मालूम हो गया कि आज की पूरी रात आखों में ही कटेगी ।

चित्रा प्रकाशन की पाँच मञ्जिल ऊँची इमारत की सर्वोच्च मंजिल पर दैनिक समाचारपत्र 'चित्ररथ' के कार्यालय में सहायक सम्पादक के पद पर नियुक्त सुमन्त की आज रात की पारी थी ।

प्रधान सम्पादक का पहला आदेश था—बम्बई, पूना और अहमदाबाद की तेरह मिलों और तीन सिनेमा कम्पनियों के मालिक सेठ रणछोड़ दास ठाकर मृत्यु-शय्या पर पड़े हैं । कल्पना-तीत धनी न होकर यदि वे धनहीन होते तो उनके सम्बन्ध में 'कल मरे आज दूसरा दिन' की कहावत सार्थक हो गयी होती परन्तु उनकी उखड़ती साँस चन्द्रोदय और मकरध्वज के रस से जमाये रहने की कोशिशें जारी हैं । साँस की टूटती हुई डोरी गत बारह घंटों से आक्सीजन की गौंठ देकर जोड़े रखने का

भगीरथ प्रयत्न चल रहा है। इन सभी प्रयत्नों का यह स्वाभाविक परिणाम हुआ है कि जिन सेठ रणछोड़दास को कल ही मर जाना चाहिए था वे आज भी अभी धरा-धाम पर ही उपस्थित हैं। प्रधान सम्पादक ने लिखा है कि सेठ रणछोड़दास की जानको रस्सी बनाकर यमराज और मर्त्य लोक स्थित उनके 'सहोदरों' में जो रस्साकशी गत बारह घंटों से जारी है उसका निर्णय अब किसी क्षण हो जा सकता है, इसीलिए सहायक सम्पादक को चाहिए कि वह सेठ जी की संक्षिप्त जीवनी पहले से ही लिख रखे जिसमें सेठ जी के परलोक-प्रयाण का संवाद पाते ही वह प्रकाशित किया जा सके।

आदेश नम्बर दो यह कि सेठ जी की रुग्णावस्था का चित्र प्रधान सम्पादक ने मँगवा लिया है और 'चित्ररथ' कार्यालय के चित्रकार से उनके चित्र पर माला, फूल, चन्दन, रोली आदि की रचना द्वारा उनके जीवितावस्था के चित्र को मरणावस्था का चित्र बनवा लिया है। उसका ब्लाक बन कर रात नौ बजे तक आ जायगा। सहायक-सम्पादक को चाहिए कि सेठ जी सम्बन्धी समाचार में यदि उपयुक्त अवसर आये, तो वही चित्र छपा जाय।

तीसरा और अन्तिम आदेश यह था कि सेठ जी की मृत्यु पर प्रकाशित किये जाने वाले अग्रलेख अर्थात् सम्पादकीय लेख के लिए प्रधान सम्पादक ने 'नोट्स' लिख कर अपनी मेज की दराज में रख दिया है। सहायक-सम्पादक को उन्हीं नोट्स के आधार पर सम्पादकीय लेख तैयार करना चाहिए।

सुमन्त इतने आदेशों का बोझ एक साथ न सम्हाल सका और धम-से अपनी कुरसी पर बैठ रहा। जैसे एक लाठी खाने के बाद आदमी अपना सिर नीचा कर ले और फिर सिर उठाते-

उठाते दूसरी लाठी भी उसके सिर पर आ गिरे, ठीक उसी तरह सम्पादकीय आदेशों की चोट से प्रपीड़ित सुमन्त जिस समय व्यवस्थित चिन्त हो ही रहा था कि दरबान फेंकू पांडे ने आकर उसे एक पुरजा दिया। पुरजा पढ़ते ही सुमन्त का धीरे-धीरे उठता हुआ सिर एक बार पुनः झुक गया। पुरजा प्रधान सम्पादक जी ने अपने घर से भेजा था। वे अपनी आदेश-तालिका में यह लिखना भूल गये थे कि सेठ जी की शव-यात्रा में (ईश्वर ऐसा मनहूस अवसर न लाये) सुमन्त को शामिल होकर उसकी आँखों देखी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी पड़ेगी।

सुमन्त ने मन ही मन कहा—आज की रात तो नष्ट हुई ई, कल का दिन भी नष्ट होगा। और उसका मन बिलबिला उठा। जैसे नदी के तल में किसी प्रकार की हलचल होने पर पानी की सतह पर भी भँवर उठने लगती है उसी प्रकार मानस में हलचल होने पर सुमन्त के मस्तक की रेखायें भँवरों के समान ही टेढ़ी मेढ़ी होने लगीं। जैसे भँवरों को देखकर चतुर माँझी तल में क्या हो रहा है इसका पता पा जाता है वैसे ही जीवन-समुद्र में अनेक तूफान भेल 'लेने के अनुभवों से चतुर फेंकू पांडे ने भी सुमन्त के मन में छिपी हुई हलचल की थाह पा ली।

कहा जाता है कि श्रम और पैसा चाहे जहाँ लगाया जाय कभी सर्वथा बेकार नहीं जाता। उसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि दुर्व्यवहार या सद्‌व्यवहार चाहे जिसके साथ किया जाय वह सर्वथा बेकार नहीं जाता और इसका प्रमाण सुमन्त को हाथोंहाथ मिला। फेंकू पांडे ने तीस बरसों से लगातार बम्बई देखी है। और बम्बई वालों के मुँह से अपने लिए केवल एक सम्बोधन सुना है—‘भैया!’ उसने यह भी बराबर

अनुभव किया है कि जिस 'भैया' शब्द का अपने लिए प्रयोग सुनकर वह गाँव में मस्त हो जाता था, वही शब्द अपने लिये यहाँ प्रयुक्त होते देख उसके क्षोभ की सीमा नहीं रहती। अतः सुमन्त ने बम्बई आकर और 'चित्ररथ'-कार्यालय में सहायक सम्पादक की जगह पाकर भी जब फेंकू को 'भैया' न कह कर 'पांडेजी' कहा तो फेंकू का रोम-रोम उस पर प्रसन्न हो गया। वह बराबर अवसर ढूँढने लगा कि सुमन्त को इस सद्व्यवहार का बदला कैसे चुकाया जाय। अतः आज सुमन्त को परेशान देख और उसके मनमें छिपे भाव का अनुमान लगाकर उसने कहा—बाबू, आप अपना काम कीजिये। बड़े साहब तो पुराने कत्तई हैं। दफ्तर भर को परेशान किये रहते हैं लेकिन बाबू, फेंकू पांडे को भी ऐसा वैसा न समझना। मैंने अपनी सोरह वरस की उमर में अपने गाँव के पटवारी मुन्सी लुटावन लाल और जमींदार खूबचन्द की नस नस पहचान ली थी। सो एक दिन खूबचंद की खूब मरम्मत की और पटवारी का भी पटरा बनाकर बम्बई भाग आया। तब से यहीं हूँ। सेठ के मरने की खबर आप मुझे दे देना। मैं ही चला जाऊँगा और सारा हाल आप से आकर कह दूँगा। आप यहाँ बैठे-बैठे रपोट लिख लेना।

फेंकू की सहानुभूतमयी वाणी से विचलित सुमन्त ने कहा—नहीं पांडे जी, तुम बुझे आदमी कहाँ तकलीफ करोगे। और अगर किस्मत में परेशानी न लिखी होती तो मैं दर दर की खाक छानता हुआ यहाँ क्यों आता।

इतना कह कर कुरसी पर बैठे बैठे ही सुमन्त ने बगल की आलमारी खोली और उसमें 'ईयर बुक' टटोलने लगा। फेंकू ने पुनः कहा—एक बात और है। न आप जाइए, न मैं जाऊँ।

अखबार को फाइल में किसी दूसरे सेठ के मरने की खबर खोजिये । उसका जो हाल छपा हो बही छाप दीजिए । खाली उस सेठ की जगह इस सेठ का नाम दे दीजिएगा । बस अच्छी खासी रपोट तैयार हो जायगी ।

सुमन्त को फेंकू की बात पर अनायास हँसी आ गयी । उसे कार्जीजी के घर केचूहों के भी सयाने होने की कहावतयाद आयी । उसे तीन ही महीने में मालूम हो गया था कि अखबारों के दफ्तरों में भी बड़े-बड़े पोल होते हैं । उसने आते ही अर्थात् नियुक्ति के बाद पहले ही दिन दफ्तर में प्रवेश करते ही देखा कि प्रधान सम्पादक जी ने बम्बई सरकार का बजट प्रकाशित होने पर और उसकी आलोचना करने में अपने को असमर्थ पाकर एक दूसरे दैनिक पत्र में प्रकाशित सम्पादकीय लेख पूरा-पूरा छाप दिया था । केवल आरम्भ और अन्त में आपने दो वाक्य लिख दिये थे । आरम्भ में लिखा था कि बजट की हमारे अमुक सहयोगी ने यह आलोचना की है और अन्त में लिख दिया था कि उक्त आलोचना से हम पूर्णतः सहमत नहीं हैं वे ही सम्पादक जी एक बार नगर रिपोर्टों पर भी बिगड़ गये थे कि तुम लोग सनसनीदार खबर क्यों नहीं लाते । संवाददाताओं ने विनीत निवेदन किया कि अगर कोई सनसनीदार घटना हो तब तो उसका समाचार लाएँ । इस पर सम्पादक जी ने डाँटते हुए कहा था कि घटनायें घटायी जाती हैं, अपने से नहीं घटतीं । न हो, तुम्हीं लोग किसी बंक के सामने परस्पर एक दूसरे को छुरा दिखाकर रुपयों की नकलो थैलियाँ छीन लो और छाप दो समाचार—दिन दहाड़े बंक के दरवाजे पर डाका । पीछे पता चला कि सम्पादक जी जब बिगड़ते हैं तो ऐसे ही उलजलूल बकते हैं ।

सुमन्त 'हू इज हू' में सेठ रणछोड़दास सम्बन्धी विवरण का अध्ययन कर उनकी जीवनी लिखना समाप्त कर ही चुका था कि फोन पर सेठ जी के अक्षय स्वर्गवास का समाचार आ गया। सेठ जी का जीवित अवस्था में ही लिया गया मरणावस्था वाले चित्र का ब्लाक आ ही चुका था। अतः प्रधान सम्पादक के नोट्स के आधार पर सुमन्त सेठ जी की मृत्यु पर अग्र लेख लिखने लगा।

फेकू पाड़े ने कहा—बाबू, कुछ बड़े आदमियों से फोन मिलाकर उनसे सेठ की मृत्यु पर वक्तव्य लीजिये।

सुमन्त ने चौककर कहा—सम्पादकजी ने यह तो नहीं लिखा है।

फेकू ने सम्पादकजी के स्वभाव के विषय में गहरी जानकारी प्रकट करते हुए कहा—उसने इसलिए नहीं लिखा है कि आप चूक जायें और उसे आपको डाटने और मालकिन से आपक शिकायत करने का मौका मिल जाय।

लेकिन आधी रात को इस काम के लिए फोन करने पर कहीं लोग नाराज न हो जायें। बड़े आदमी जो ठहरे—सुमन्त ने द्विविधा अनुभव करते हुए कहा।

फेकू ने उत्तर दिया—बाबू, ढेरसा पढ़ लिख लेने से क्या होता है, हो तो बच्चे ही न। तीन महीने बम्बई आये हो गये और आपको अभी यही नहीं मालूम की आधी रात को यहाँ साँझ होती है। और बड़े आदमी इन्हीं बातों से खुश रहते हैं जिनसे उन्हें अपना बड़प्पन मालूम होता रहे। मैं चाय लाता हूँ, तबतक आप बाजूबाले मकान में फोन करो। एडभोकेट जनैलको यह खबर सुनाओ और उनका वक्तव्य लिखो।

फेकू चाय लाने चला और सुमन्त ने एडवोकेट जेनरल को

टेलीफोन पर सेठ रणछोड़दास के स्वर्गवास का समाचार सुनाया । उनींदे एडवोकेट जनरल क्लब से लौट कर अभी-अभी सोये थे । पहली नींद थी । मीठी और गहरी । उसी नींद में व्याघात उन्हें न सुहाया । उन्होंने फोन उठाया और झल्लाते हुए बोले—कौन है ? इस वेबक्त्—

सुमन्त न उनकी बात काटकर जल्दी से कहा—सेठ रणछोड़ दास मर गये ।

एडवोकेट जेनरल ने मिनट भर कोई जवाब न दिया । सुमन्त को सन्देह हो चला कि शायद फोन रख दिया गया । मगर त्योंही भर्राये हुए गले से आवाज आयी—सेठ साहब बहुत ईमानदार आदमी थे । परसाल जब उनपर इनकमटैक्स का तीन लाख रुपया दबा रखने का जो मुकदमा चला था उसमें मैं सरकारी वकील था । फिर भी मैंने जजों के सामने यही बात कही थी और अन्त में यही प्रमाणित भी हुआ था । ऐसे आदमी दुनिया में कम होते हैं । मुझे बड़ा अफसोस हुआ ।

वाक्य समाप्त होते ही 'घन्न' आवाज आयी और सुमन्त समझ गया कि एडवोकेट साहब ने फोन रख दिया है । उसने दूसरा नम्बर मिलाया । ये सज्जन फाटके के बादशाह थे । उन्होंने यह दुखद समाचार सुनकर कहा—अजी मेरी तो बोली बन्द हो गयी यह खबर सुनकर । क्या कहूँ, गला भरा आ रहा है ।

फोन पर जैसे सिसकने की आवाज आयी और फिर वही 'घन्न' । सुमन्त समझ गया कि सेठ जी इससे अधिक कुछ न कहेंगे ।

तीसरी जगह फोन मिला कर यह दुखद समाचार सुनाते ही झटके से जवाब मिला—बड़ा दुख हुआ साहब ! अभी कुछ कह नहीं पा रहा हूँ, फोन लिये रहिये—अभी कहता हूँ ।

दो मिनट प्रतीक्षा करने के बाद सुमन्त ने कहा—कहिये । भल्लाकर जवाब मिला ठहरिये । डायरी नहीं मिल रही है ।

बेचारे ने डायरी में लिख रखा था कि ऐसे अवसरों पर क्या कहना चाहिये । वही डायरी जब सहसा मिल गयी तो चल्लसित होकर बोल उठे—मिल गयी, मिल गयी । लिखिये परमात्मा दिवंगत आत्मा को शान्ति का आवरण प्रदान करे । सेठजी युग-पुरुष थे । ऐसे पुरुष एक युग में एक बार दिखाई देते हैं ।

इसी समय पांडे चाय लेकर आया । सुमन्त उसकी सहृदय सेवा पर मुग्ध हो गया । गदगद स्वर में बोला—देखता हूँ पांडे दादा, इस परदेश में तुम न मिलते तो बड़ी मुश्किल होती ।

पांडे दादा परम सन्तुष्ट भाव से सम्पादक बाबू वाला सम्बोधन तत्काल त्यागते हुए बोले—

—भैया ! मेरे रहते किसी तरह की चिन्ता न करना । फेकू पांडे ने जमींदार और पटवारी की तरह बम्बई की भी नस पहचान ली है ।

अपने प्रति 'भैया' सम्बोधन पर सुमन्त मुस्कराया । उसने फेकू के प्रति इसी शब्द का प्रयोग बचाकर उसकी प्रियता प्राप्त की थी । सहसा स्वर नीचा करते हुए मुद्रणयन्त्र की भीषण यन्त्रणापूर्ण क्रन्दन ध्वनि में भी अतिरिक्त यहृतियात से काम लेते हुए कहा—भैया, मालकिन के सामने बहुत जरूरी होने पर ही जाना । सुमन्त हंस पड़ा । सहसा टेलीफोन घनघनाया मुंह से चाय का प्याला और कानों से टेलीफोन का चोंगा लगाये हुए सुमन्त ने सुना कि चित्रा-प्रकाशन की स्वामिनी चित्रा देवी पूछ रही हैं—सेठ रणछोड़दास की कुछ खबर मिली ।

मुँह का प्याला टेबुल पर रखते हुए सुमन्त ने कहा—जी हाँ ।
उनका देहान्त हो गया ।

जैसे कोई सिर का बोझ उतर जाने पर सन्तोष की साँस ले
उसी प्रकार साँस लेकर चित्रा ने कहा—शुभ समाचार है । इतने
दिन बाद बेचारी नन्दिता का बन्धन कटा । मगर मेरे वक्तव्य
में तुम्हें यह नहीं लिखना है सुमन्त ।

जी हाँ जानता हूँ ।

तो मेरे वक्तव्य में क्या लिखोगे ।

यही लिखूँगा कि चित्रादेवी का सेठ रणछोड़दास जी की
विधवा नन्दिता देवी से गहरा सखित्व है । अपनो सखी पर
इस अनभ्र बध्न गत का समाचार सुनते ही कटे हुए वृक्ष की तरह
वे भूमिपर गिरी और बेहोश हो गयीं । यह समाचार प्रकाशित
होने तक उन्हें होश नहीं आया है । अतः उनका वक्तव्य प्रकाशित
करने में हम सखेद असमर्थ हैं ।

फोनपर खिलखिलाहट की आवाज आई और बाद में सुन
पड़ा—तुम तो बड़े होशियार सम्पादक हो मगर सेठ के मरने की
खबर पाकर मुझे डर लग रहा है । तुम फौरन यहाँ आओ ।

परन्तु सम्पादकजी ने मुझे सेठ जी की शव-यात्रा में शामिल
होने के लिए कहा है ।

शव-यात्रा सुबह होगी । यहीं से चले जाना । अभी यहाँ
आओ ।

सुमन्त ने खिड़की से बाहर आसमान में छाये हुए बादलों
को देखा । हवा के झोंके में ठंडक को लहर का अनुभव किया
और फिर जैसे कराह रहा हो, उत्तर दिया—अच्छा आ रहा हूँ ।

सड़कों पर ट्राम का चलना कभी बन्द हो चुका था ।
आसपास कोई विकटोरिया भी नहीं दिखाई पड़ी । फलतः उसनी

रात को सुमन्त पैदल ही चित्रा-प्रकाशन की स्वामिनी चित्रा देव के बंगले की ओर चला । कार्यालय से बंगला पूरे दो कोस पश्चात् था ।

सिर पर बादल गड़गड़ा रहे थे ।

ठंडी हवा के झकोरे शरीर में सिहरन पैदा कर रहे थे और कहीं दूर ग्रामोफोन पर गायी जाने वाली गजल का यह टुकड़ा सुमन्त को बरबस सुन पड़ा ।

साज ये कीना साज क्या जानें ?

नाज वाले नियाज क्या जानें ?

सुमन्त ने भी कहा—नाजवाले नियाज क्या जानें ?

बैठ जाता हूँ जहाँ छावँ घनी होती है

संगरमरमर की सफेदी में अगर गुलाब की लाली घोलकर कोई रंग तैयार किया जा सके तो वही रंग चित्रा का था। आक्सफोर्ड की शिक्षा के संग यदि शान्ति निकेतन की कला का उमंगपूर्ण दंग मिलाया जा सके तो वही दंग चित्रा का था। ऐसा रंगदंग यदि किसी निर्जीव चित्र में भी हो तो आदमी उसे देख कर दंग रह जाय। फिर सजीव चित्रा में यह रंग-दंग देखकर जिस जानदार यौवन के मन में तरंग न उठे उसके सम्बन्ध में मान लेना होगा कि उसकी बुद्धि में भंग पड़ी हुई है।

परन्तु सुमन्त की बुद्धि में भंग नहीं पड़ी थी बल्कि उसके मन की मदिरा ही बड़ी कड़ी थी। उसकी रंगीनी में उसे अपने किसी काम की संगीनी समझ में न आयी। जलकी—शीतल जल की खोज में इधर उधर दौड़ कर उसका हाँफ उठने वाला मन चित्रा की रंगीली रूप सरिता में मुँह लगाकर जब बेतहाशा पानी पीने लगा तो उसका वही परिणाम हुआ जो वैसे आदमी का होता है जिसे धूप में घंटों दौड़ने के बाद दम लेने का अवसर दिये बिना ही आकंठ पानी पिला दिया जाय। ऐसे आदमी का पेट फूल उठता है, सांस रुकने लगती है। ठीक यही दशा इस समय सुमन्त की थी।

पैदल चलने का विशेष अभ्यास न होने के कारण चलते चलते सांस के वेग से उसका पेट फूल उठा। इस भयको उसकी थकावट ने दबा दिया कि यदि दूर होगी तो पानी बरसने लगेगा। अतः वह एक विशाल मूर्ति की छाया में बैठ रहा। अन्धकार में यह पहचान न पाया कि वह पाषाण प्रतिमा किसी जन-नेता की, जन-सेवक की, या किसी जन-नाथ की है।

यदि छत बहुत ऊँची हो तो सारी धूप घर में भर जाती है और छाया की माया परम ब्रह्म के पास गमन कर जाती है। जन-नाथों से मिलनेवाली छाया ऐसी ही होती है। जन-सेवक नाटी छतके समान होते हैं। स्वयं भले ही जलते बलते रहें, अपनी छाया में पड़े हुए जन को भरसक लू की लपेटों से बचाते हैं। सारा बौछार अपने सिर लेकर उसकी रक्षा करते हैं। जन-नेता वैसे ही होते ही जैसे जन-नाथ। नेता और नाथ की एक राशि है और सेवक की दूसरी।

जन-सेवक की पाषाण-प्रतिमा की छाया में बैठा हुआ एक सेवक सुमन्त रह रहकर सोच रहा था चित्रा देवी के प्रथम

दर्शन की बात। अपनी पत्नी के कहने पर अपनी सारी गैरत का रस गार कर घोट जानेके बाद जिस समय उसने चित्रा को उसके द्वारा प्रेषित नियुक्ति-पत्र के उत्तर में लिख भेजा था कि मेरे पास बम्बई आने तक का पैसा भी नहीं है तो उसने उसकी आधी तनख्वाह तत्काल पेशगी भेज दी थी। उसके इस काम में सुमन्त को सहृदयताकी गन्ध लगी थी।

यहां आनेपर उसे अपने अनुभव में कुछ संशोधन करना पड़ा। साधारण-सा संशोधन। चित्राके सम्बन्ध में फिलहाल उसका यही विचार था कि उसका हृदय जितना सुन्दर है उससे उसका रूप कई गुना अधिक सुन्दर है। उसके मनकी सुन्दरता पर कभी कभी सन्देह भी किया जा सकता है परन्तु उसके तनकी सुन्दरता निर्विवाद है। यह अनुभव एकबार फिर नये सिरेसे होनेका परिणाम यह हुआ कि सुमन्त का मन चित्राके सौन्दर्य सागर के चारो ओर उसी प्रकार मंडराने लगा जैसे किसी तालाब के चारो ओर बगुलों का दल।

सुमन्त अब बैठा न रह सका। उठा और चित्रादेवी के बंगले की ओर पुनः चल पड़ा।

चित्रा के फोन रखते ही सुधीरा ने पूछा—सेठ जी क्या मर गये बाई।

चित्रा ने सिर हिलाकर सुधीरा की आशंका की पुष्टि कर दी। सुधीरा ने पुनः पूछा—बाई, मैं तो यहां मौजूद ही थी, आपने डर कर सुमन्त बाबू को क्यों बुलाया।

देखती हूँ सुधीरा, तू मेरे निजी कामों में अब ज्यादा दखल देने लग गयी है—चित्रा ने कृत्रिम क्रोध दिखाते हुए कहा।

नहीं बाई साब, मैंने तो इसलिए पूछा था कि सुमन्त बाबू

आयेंगे तो उनके सोने का प्रबन्ध किस कमरे में करना होगा ।— सुधीरा ने अत्यन्त विनीत भाव से अपनी सफाई दी ।

तू मेरे यहां नयी-नयी आई है न, इसी से पूछ रही है । जिस कमरे में पिछले महीने देसाई साहब सोये थे उसी में सुमन्त भी सोयेगा । जा तू अपना काम देख ।

ओठों में ही बुदबुदाती हुई सुधीरा कमरे के बाहर निकल आयी—देसाई साहब तो सड़क की पटरी पर सोये थे ।

सचमुच देसाई साहब ने गत २८ दिसम्बर की रात सड़क की पटरी पर ही बिताई थी । ऐसा केवल इसलिए कहा गया क्योंकि उनकी पद मर्यादा को देखते हुए यही कहना उचित था यदि यह कहा जाता तो वह सत्य के अधिक निकट होता कि देसाई साहब ठीक सड़क पर पड़े हुए थे और का-सटेबल ने उन्हें ऐसी दशा में पाकर सरकारी सराय की एक जंगलेदार कोठरी में टिकाया परन्तु प्रभात होते ही जब कि पुलिस उन्हें सरकारी अनाथालय में भरती करने के लिए मजिस्ट्रेट की अदालत में पेश करने वाली ही थी कि देसाई साहब प्रकृतिस्थ हुए । उन्होंने अपना परिचय प्रकट किया । थाने के सर्वोच्च अधिकारी ने अपने ऊंचे अधिकारी से बात की और उसने अपने भी ऊंचे अधिकारी से । बात चीत का यह सिलसिला इतनी दूर चला कि गृह-मन्त्री को ठीक प्रातिराश के समय टेलीफोन पर कुछ आश्चर्य, कुछ दुख, कुछ क्षोभ और फिर तत्काल छुटकारे के सम्बन्ध में कुछ आदेश भी देना पड़ा और जैसे तालाब की लहर अर्द्ध-वृत्त बनाती हुई तट तक जाती है और वहां से पुनः मध्य धारा में वहीं आ जाती है जहां से वह चली थी, उसी प्रकार बातों का सिलसिला जहां से शुरू हुआ था वहीं अर्थात् उसी थाने में

आकर समाप्त हुआ जहाँ देसाई साहब थानेदार के साथ चाय पी रहे थे ।

चित्रा ने देसाई साहब का उदाहरण देकर सुधीरा को उस रात के लिए छुट्टी दे दी और स्वयं जब अपनी शय्या पर पड़ रही तो उसे जल्दी नींद न आयी । नींद की जगह बराबर देसाई साहब की याद आ रही थी । सुमन्त के पहले तक वह उसके प्रेमी थे । वह तब उन्हीं से प्रेम करती थी अर्थात् वे ही उसके मनोरंजन के साधन थे । अपने मनोरंजन का वह साधन जिसे देसाई साहब कहा जाता था चित्रा को कुछ ऐसा दिलचस्प प्रतीत हुआ कि उसने एकबार यह इरादा भी कर लिया कि मनोरंजन के इस साधन को स्थायी बना लिया जाय अर्थात् इसके साथ विवाह कर लिया जाय ।

विवाह की बात पक्की भी हो गयी थी । परन्तु जैसे सभी योजनाओं में बाधा पड़ती है वैसे ही इस शुभ कार्य में भी बाधा पड़ गयी । चित्रा लेंटे-लेंटे उसी सत्य का स्वप्न देख रही है—

जिस दिन देसाई साहब के साथ चित्रा के एनगेजमेण्ट (विवाह पक्का होना) की घोषणा हुई थी उसी दिन लोनों ने भविष्य की कल्पना कर विज्ञतापूर्वक सिर हिलाया था । स्पष्ट था कि इस विवाह का परिणाम शुभ न होगा । प्रत्येक दृष्टि से यह जोड़ा परस्पर अनुकूल न था । देसाई साहब के लंगोटिया यार खापर्डे ने कहा—मेजर कीर्तन देसाई जल्दी किसी एक औरत का पालतू कभी न बनेगा । पोपट लाल ने खापर्डे के वक्तव्य का समर्थन करते हुए उसमें एक संशोधन किया । उसने कहा—कीर्तन देसाई जल्दी क्या, 'कभी' औरत का पालतू न बनेगा । मगन मेहता ने कहा—ठीक कहते हो । देसाई जैसा आदमी जो बराबर दुनियाँ भर का चक्कर लगाता रहा है और जैसे हम लोग बैंक

से रुपया निकालते हैं उसी तरह जो जिन्दगी भर आदमियों की जान निकालता रहा है, वह एक लड़की को लेकर घर कैसे बैठ जायगा। मैं कहता हूँ कि यदि चित्रा की जगह वह किसी अभिनेत्री से विवाह कर लेता तो एक बात भी थी मगर चित्रा से व्याह। निबाह कठिन है। निभती तो वहाँ है जहाँ एक नरम दूसरा गरम हो मगर जहाँ दोनों ही गरम हों वहाँ क्या होगा, अपनी गरमी से दोनों एक दूसरे को झुलसा देंगे।

खापड़ें ने उपसंहार का प्रयत्न करते हुए कहा—यह विचित्र संसार है। बड़ा ही विचित्र। लेकिन हम लोग किसी का अनभल क्यों चेतें। जो कुछ हो, यह कुछ हमारा व्याह तो हो नहीं रहा है। सोलह आने में पन्द्रह आने आशा है कि दोनों इस विवाह से उतनी ही सफल जिन्दगी बितायेंगे जितनी-जितनी हम लोग बिताते हैं।

हां, उतने ही दिनों तक जबतक उन्हें मालूम नहीं हो जाता कि वे दोनों एक दूसरे के लिए नहीं बने हैं। और तब मेरे दोस्त जानते हो क्या होगा—प्रलय। न तो हवा में पानी मिलाया जा सकता है और न पानी में तेल। —मगन मेहता ने कहा।

वस्तुतः उन तीनों ने वही बात जोर-जोर से की थी जो आधी बम्बई सोचती थी और आधी बम्बई फुसफुसाती थी। और ऐसी बात जिनके बारे में की जाती हैं उनके कानों में चाहे बाद पहुँचे उनके अभिभावकों के कानों में पहले ही पहुँचती है। फलतः चित्रा के पिता जिन्होंने पृथक आवास के साथ ही चित्रा को पूर्ण स्वतंत्रता भी दे रखी थी स्वयं न आकर टेलीफोन पर ही उसे आदेश दिया कि वह देसाई से साफ साफ कह दे कि यह विवाह न हो पायेगा। उधर देसाई की माता ने उसपर दबाव

डाला कि वह इतने बड़े विश्वमें और चाहे जहां और चाहे जिससे विवाह कर ले परन्तु चित्रा से नहीं ।

कढ़ाई चूल्हे से उतार ली जाने के बाद भी कुछ देर गर्म रहती है । विवाह वार्ता टूट जाने पर भी कुछ दिनों चित्रा और देसाई साहब में मिलना जुलना चलता रहा परन्तु अब चित्रा देसाई को उतनी दिलचस्प न लगती और देसाई से भी अब चित्रा का वतना मनोरंजन न हो पाता । मनोरंजन में कमी होते ही चित्रा समझ गयी कि देसाई के प्रति अब उसका प्रेम नहीं रहा और जिससे प्रेम नहीं उससे विवाह करना विशुद्ध व्यभिचार है यही उसके जीवनभर की शिक्षा का चिह्न था । इसी समय उसके पिता द्वारा उसे सौंपे गये चित्रा प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड द्वारा प्रकाशित हिन्दी दैनिक 'चित्ररथ' में सहायक सम्पादक की जगह खाली हुई । उस पदपर नियुक्त होकर सुमन्त बम्बई आया । पहले चित्रा की सहृदयता और बाद में उसके रूप ने उसे आकृष्ट किया । चित्रा को अपने मनोरंजन का एक साधन मिला । इस योगायोग के फलस्वरूप देसाई साहब से चलनेवाली विवाह वार्ता इस तरह टूटी जिस तरह टूटने की उम्मीद खापर्डे, पोपटलाल एन्ड मगन मेहता एन्ड कम्पनी ने भी न की थी । चित्रा ने देसाई साहब से अन्तिम बार अपना मनोरंजन गत २८ दिसम्बर को किया था । मनोरंजन की तरकीब सोचते-सोचते जब वह सोई तो सहसा रात एक बजे उसकी नींद खुल गयी उसी समय मनोरंजन की एक नयी तरकीब उसके दिमाग में आयी थी । उसने तुरत देसाई साहब को फोन किया कि इसी समय यहां आओ मगर अपनी कार से न आकर टैक्सी से आना । नशे में मूर्खते हुए भराये कन्ठ से देसाई ने पूछा था—टैक्सी से क्यों

आऊँ । और चित्रा ने कहा था— यही समझने की बुद्धि होती तो मेरी शादी तुमसे क्यों टूटती । लेकिन अब जब कि वह टूट चुकी है इतनी रात को तुम अपने शोफर के साथ यहां आओगे तो उसका नतीजा क्या होगा यह तुम सबेरे होश में आने पर ही समझ सकते हो, अभी नहीं । और इस हालत में तुम खुद गाड़ी चलाकर आ नहीं सकते । चित्राकी इस बात से देसाई कायल हो गया और जल्दी से पतलून की जेब में हिस्की की बोटल डाल टैक्सी पर खाना होगया । रास्ते में उसने निर्जल बोटल आधी से अधिक खाली कर दी । फलतः टैक्सी बिदाकर जब उसने चित्रा के घर की घण्टी दवाई तब सुधीरा ने उसे अपनी मालकिन का जवाब सुना दिया कि सो रही हैं । इस वक्त किसी से नहीं मिल सकती और दरवाजा बन्द कर दिया । देसाई लौटा परन्तु उस समय सड़क पर दूसरी टैक्सी न मिली और चलने में असमर्थ देसाई सड़क पर ही गिर पड़ा । देसाई का मान-भंजन हुआ, चित्रा का मनोरंजन हुआ ।

अपने कमरे में जिस प्रकार करवटें बदलती हुई चित्रा भूतकाल को प्रत्यक्ष देख रही थी उसी प्रकार उसकी दासी सुधीरा भी अपनी कोठरी में पड़ी विचार कर रही थी कि उसकी हर तरह से अच्छी मालकिन अगर यह खिलवाड़ छोड़ कर किसी भले आदमी से विवाह कर ले तो वही अच्छा उसे इसकी आशा भी हो गयी थी जब कि एक दिन उसने चित्रा को नन्दिता से यह कहते सुना कि देसाई से विवाह कर मैं भूल कर रही थी । वह तो मेरा मनोरंजन करने की जगह मुझ पर अपना रोब जमाना चाहता था । पति तो ऐसा होना चाहिये जो पत्नी का मातहत होकर रहे और ऐसा पति वही हो सकता है जो अपना नौकर हो । क्यों नन्दिता, यह सुमन्त कैसा रहेगा ।

मगर आज चित्रा ने जब सुमन्त के साथ भी वही मजाक किया था जो वह देसाई के साथ कर चुकी थी तो सुधीरा को बड़ा क्लेश हुआ। वह सुमन्त को अपने वर्ग का समझती थी अर्थात् रोज कुंआ खोद कर पानी पोने वाला वर्ग। अतः उसे सुमन्त के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति थी। यह सहानुभूति उस समय बढ़ गयी जब चित्रा ने उसके साथ आज यह कठोर मजाक किया। उसका पाँत नन्दन कपड़े की मिल में मजदूर था। उसकी रात को पारी थी। खाना खिला कर उसे काम पर बिदा करते समय सुधीरा ने आकाश में घिरे बादलों को देखा था और ट्राम पर सवार होकर अपने पति को कारखाने जाते देखा था। वह जानती थी कि इतनी रात ट्राम नहीं चलती इसलिए सुमन्त को यहां तक पैदल ही आना पड़ेगा। कहीं आते आते रास्ते में पानी गिरने लगा तब तो सचमुच सुमन्त की पूरी पूरी दुर्दशा हो जायगी। आह बेचारा।

सुधीरा ने एक निगाह विस्तर पर पड़े अपने दोनों बच्चों पर डाली फिर अपने गोद के बच्चे को चूमा और फिर अत्यन्त स्नेह के साथ अपने पेट में भ्रूण को हिलता डुलता अनुभव किया। जैसे पानी उबलने से भाप ढक्कन पर छा जाता है वैसे सुधीरा के हृदय का वात्सल्य भाव उसके मुखमंडल पर छा गया। उसी समय पोर्टिका का घंटी घ घनायी।

घंटी बजने की आवाज सुधीरा ने भी सुनी और चित्रा ने भी। चित्रा ने उठकर रोशनी बुझा दी और फिर खिड़की का परदा हटा कर नीचे सुमन्त को देखने लगी। सुधीरा ने उठकर दर्वाजा खोल दिया। पानी से तरबतर सुमन्त उसके सामने खड़ा था।

सुमन्त को चर्चगेट के पास पहुँचते पहुँचते यह भी याद हो

आया था कि इसी स्थान पर बम्बई आने के तीसरे ही दिन जब कि वह चित्रा के साथ जा रहा था, किसी उत्तर प्रदेशीय आबारा मिजाज तहमद धारी युवक ने चित्रा की ओर देखते हुए गाया था—

बला जूड़े की बन्दिश है, क्यामत कद-ए-बाला है ।

अजब मुखड़ा, गजब चितवन, बदन सांचेमें ढाला है ॥

और यह सुनते ही सुमन्त उसके साथ कुछ उत्तम मध्यम करने की इच्छा कर ही रहा था कि चित्रा ने कहा था कि यह तो कोई नाराज होने की बात नहीं है सुमन्त । उसने मेरे रूप की निन्दा नहीं, प्रशंसा ही की है ।

उसके विचार चलते चलते जब यहां तक पहुँचे थे उसी समय उसके पैर चलते चलते चौपाटी पहुँच गये थे और चौपाटी पर चित्रा का बंगला था । वहां पहुँचने के पहले ही पहले तो छोटी छोटी बूंदें, फिर बड़ी बड़ी बूंदें पड़ने लगीं और उसके बाद मूसलधार वर्षा आरम्भ हो गयी । सुमन्त के कपड़े ही नहीं, कपड़ों के नीचे उसके शरीर का चर्म ही नहीं, बल्कि उस चमड़े के नीचे उसकी हड्डियां तक पानी से जैसे तर हो गयीं ।

जिस समय सुमन्त चित्रा के बंगले पर पहुँचा उस समय रात के दो बज चुके थे । उसने बिजली की घंटा का बटन दबाया । चित्रा देवी की दासी सुधीरा ने दर्वाजा खोलते हुए कहा—मेम साहब सो गयी हैं ।

सुमन्त ने कहा—उन्होंने मुझे बुलाया था ।

—बुलाया होगा । वह आप से भी बड़े आदमियों को रात इसी तरह फोनपर बुलाती हैं और यहां आने के लिए कहती

हैं। परन्तु जब बुलाया हुआ आदमी आता है तो उन्हें सोयी पाता है और अछताता-पछताता लौट जाता है।

सुमन्त ने जवाब सुना, आखें उठाकर आसमान का सिलेटी रंग देखा और वहां से टलने की जगह वहीं सिर झुकाकर स्थिर हो रहा। सुधीरा ने उसकी दशा देखी। यह भी खयाल आया कि इसी हालत में इसे न जाने कितनी दूर पैदल जाना पड़ेगा। इतना पैसा बेचारे के पास कहां कि टैक्सी पर जाय। उसे सुमन्त पर दया आ गयी। बोली—अच्छा तो एक काम करो। मेरे कमरे के बाहर दालान में अपने कंड़े उतार दो। मेरी धोती चादर ओढ़ कर कुरसी पर बैठे रहो और जब सबेरा हो जाय तब चले जाना।

सुमन्त ने हिचकिचाते हुए प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।

कुरसी पर बैठे बैठे सुमन्त की आंखें लग गयीं। वह सपना देखने लगा। स्वप्न में देखा कि बयाबान मैदान है। कोसों तक कहीं छाया का नाम निशान नहीं। वह चलते चलते थक गया है। चाहता है कि कहीं कोई सघन छायादार वृक्ष मिले तो वह उसीके नीचे बैठ कर थोड़ी देर विश्राम करे। इधर-उधर निगाह दौड़ाने पर वह देखता है कि दो वृक्ष दिखाई पड़ रहे हैं। एक ताड़ का पेड़ है—पास है, दूसरा नीम का पेड़ है—दूर है। वह नीम के पेड़ के नीचे जाकर बैठ जाता है। ताड़ का पेड़ खिल-खिलाकर हंस पड़ता है और सुमन्त से कहता है कि बैठना ही है तो मुझ महान वृक्ष की छाया में बैठते जिसका सिर आकाश को छूता है। सुमन्त उसे उत्तर देता है—बड़े हुए तो क्या हुआ जैसे ताड़ खजूर।

क्या इसीलिए इस नाटी नीम की छाया में बैठ गये हो।
—जैसे ताड़ ने प्रश्न किया।

सुमन्त ने जबाब दिया—हां, बैठ जाता हूँ जहां छाँव घनी होती है ।

चित्रा की आवाज पर सुमन्त की आंख खुली । धूप फैल चुकी थी । चित्रा हंसती हुई कह रही थी—आखिर तुम्हें मज-दूरनी की फोठरी में आराम मिला ।

सुमन्त ने कोई जबाब न दिया । उसके मन में अभी ताड़ को दिया हुआ जबाब गूँज रहा था—

बैठ जाता हूँ जहां छाँव घनी होती है ।

कुलकुल के आंसुओं में है खुशबू गुलाब की

जिस समय चित्रा सुमन्त के साथ नन्दिता के घर पहुँची तो वहाँ हाहाकार मचा हुआ था। सड़क पर आगन्तुकों की मोटरों की कतार लगी थी। 'रणछोड़ मैन्शन्स' के सभी कमरों के चटकीले परदे हटा दिये गये थे और उनकी जगह काले रंग के परदे टांग दिये गये थे। स्वयं नन्दिता ने भी गहरे काले रंग की साड़ी धारण कर ली थी और उस काली साड़ी में उसका गोरा-गोरा मुखड़ा ऐसा जान पड़ता था जैसे अमावस्या की रात

में पूर्णिमा का चांद निकला हो । नन्दिता की आंखें लाल हो रही थीं । चित्रा को देखते ही उसकी आंखों से आंसू की धारा फूट चली । चित्रा को आश्चर्य हुआ—नन्दिता के रोने पर नहीं, प्रत्युत उसके रुदन के अभिनय की कुशलता पर । चित्रा जानती थी कि यह नन्दिता की मुक्ति का दिन है और बन्धन से मुक्ति मिलने पर हंसना ही स्वाभाविक है, रोना नहीं । फिर भी अगर कोई रोये ही तो उसका रोना या पाखंड है या फिर विशुद्ध मूढ़ता । यतः नन्दिता मूढ़ नहीं है अतः यह उसकी मूढ़ता नहीं, पाखंड ही है ।

चित्रा को यह भी मालूम था कि के० एल० कलमवाला ने अपनी पत्नी को इसलिए घुला घुला कर मार डाला जिसमें वह नन्दिता से ब्याह कर सके । परन्तु नन्दिता के मां-बाप ने उसका विवाह सेठ रणछोड़दास से कर दिया । अतः नन्दिता मन ही मन सेठ रणछोड़दास से घृणा करती रही है । इसलिए भी ऐसे घृणित व्यक्ति से छुटकारा पाने पर नन्दिता को प्रसन्न होना चाहिये था, रोना नहीं । इसलिए भी चित्रा का इस तरह रोना नकल ही है—अभिनय ही है और कुछ नहीं । परन्तु अभिनय भी वही जमता है, वही चोखा उतरता है जिसमें सभी पात्र अपनी भूमिका स्वाभाविक ढंग से प्रदर्शित करें । अतः चित्रा ने नन्दिता के दुख में समवेदना प्रकट करने का अभिनय किया । रूमाल से रगड़ रगड़ कर अपनी भी आंखें लाल कर लीं ।

सेठ रणछोड़दास का शव बाहर पलंग पर पड़ा था । नन्दिता ने अपने हाथों शव के माथे पर चन्दन छोप दिया था और उसके गले में तुलसी की मोटी सी माला लपेट दी थी । इस प्रकार सेठ रणछोड़दास का शव परम वैष्णव का शव बना पंचतत्व में मिल जाने की प्रतीक्षा कर रहा था । चित्रा ने देखा

कि सेठ जी के मुख मंडल पर उस कष्ट के चिन्ह अभी तक स्पष्ट हैं जो कठिनाई से सांस लेने के कारण उन्हें मेलना पड़ा था। नन्दिता ने रोते हुए कहा—आक्सीजन बराबर दिया जा रहा था फिर भी सांस न ले सके।

उसने शव की ओर से मुंह फेरते हुए अपने पति के प्राइवेट सेक्रेटरी से जल्दी शव उठवाने और उसका अन्तिम संस्कार करवाने की ताकीद की। सभी ने समझा कि बेचारी नन्दिता को अपने पति का मृत रूप देख कर बड़ी पीड़ा हो रही है और इसीलिए वह शव जल्दी उठवाने का आग्रह कर रही है। सुमन्त का कोमल हृदय भी यह दृश्य देख कर व्याकुल हो उठा। उसने चित्रा का साथ छोड़ दिया और यह कह कर कि समाचार के लिए तथ्य संग्रह करना जरूरी है इसलिए मैं जरा घूम फिर कर देख लूं कि कौन-कौन से उल्लेखनीय व्यक्ति पधारे हैं, वह वहां से हट गया और उस प्रासाद के उपवन में जाकर एक निर्जन कोने में बैठ रहा। उसके जाते-जते चित्रा ने उससे कहा—समाचार के साथ दिल में चुभने वाला शीर्षक लगाना और शव यात्रा के चित्र के साथ सेठजी की जवानी का भी कोई चित्र दे देना।

चित्रों की उक्त बात से उस बैंगन की तरह जो किसी के लिए पथ्य होता है और किसी के लिए व्याधिकारक, सुमन्त के ओठों पर मुस्कराहट आयी जिसे उसने बलपूर्वक रोक लिया। और नन्दिता के मुंह पर मुर्दनी छा गयी। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। चित्रा ने उसे गिरते-गिरते सम्हाल लिया। उपस्थित लोगों ने तय किया कि ऐसी मनस्थिति में नन्दिता को शव-यात्रा में शामिल करना ठीक नहीं। परन्तु नन्दिता होश में आकर बोली—मैं जरूर जाऊँगी। मुझे कोई नहीं रोक सकता। वह अपने बिखरे केश नोचने लगी। लोग समझाने बुझाने लगे। तब सहसा वह

उन्मादिनी की तरह उठी और टेबुल पर पड़ी कैची उठा ली। लोग डर गये कि कहीं भोंककर आत्महत्या न कर ले और यही सोचकर 'हाँ-हाँ' करते हुए कैची छीनने के लिए झपटे। जबतक कोई उसके पास पहुँच कर उसके हाथों से कैची छीने तबतक उसने अपने नितम्ब-विलम्बित अलकों का एक टुकड़ा झट से काट दिया और शव के गले में लपेट कर उसमें कड़ी गांठ लगाती हुई वह बोली—अच्छी बात है। अगर उनके साथ मुझे नहीं मरने दे रहे हो तो कम से कम मेरी यह लट ही उनके साथ जल जाने दो। खबरदार मेरी लट में कोई हाथ न लगाये। उसपर हाथ लगाने का जिसे अधिकार था वह तो स्वर्ग गया और यही कहते कहते वह दूसरी बार बेहोश होकर गिर पड़ी। लोगों ने उस दुखी विधवा की इस इच्छा का सम्मान करने का दृढ़ निश्चय किया और उसको बेहोशी से लाभ उठाकर शव उठवा दिया। दासियों ने नन्दिता का बेहोश शरीर उठाकर उसके कमरे में ले जाकर पलंग पर लिटा दिया और इसके बाद वे सब भी शव यात्रा में शामिल हो गयीं। उतने बड़े महल में एक नौकर, नन्दिता और बाग में बैठे सुमन्त के सिवा और कोई न रह गया।

नन्दिता आंखें बन्द किये पलंग पर पड़ी थी परन्तु उसे यह देख आश्चर्य हो रहा था कि वन्द आखों से भी विचित्र चीजें देखी जा सकती हैं जैसे आज से कुल सात दिन पूर्व इसी कमरे में जो घटना घटी थी उसे वह देख रही थी। वह देख रही थी कि उसके पतिदेव, जिन्हें अखबारवाले नरपुंगव कहते हैं, आतिशदान में बुझती हुई आग की ओर दृष्टि जमाये देख रहे हैं। वे अपनी गद्देदार आराम कुरसी पर पड़े हुए हैं। आधा हाथ कुरसी के डंडों पर आराम से पड़ा है और आधा निर्जीव सा नीचे लटक रहा है। हाथ की नीली नसें उभर आयी हैं। वह

आतिशदान के पास बैठी हुई बड़े ध्यान से उन उभरी हुई नीली नसों को ध्यान से देख रही है। इस तरह देख रही है जैसे कोई बच्चा मिठाई की ओर लोलुप दृष्टि से देखे। उसकी निगाह उन नीली नसों से उठ उठ कर बीच बीच में उस नर पुंगव के चेहरे पर पड़ती है और वह उसकी आंखों में उसके मनोभाव पढ़ने की कोशिश करती है। इस समय कोई मनोविज्ञानविद् यदि उसे देख पाये तो उसके चेहरे की प्रत्येक रेखा, उसकी अधखुली आंखों और तनिक-तनिक उठी हुई भौहों में केवल दो अक्षर पढ़े, बड़े बड़े अक्षरों में लिखा हुआ—घृणा।

सहसा नर पुंगव के निर्जीव से पड़े हाथों में कम्पन हुआ और उन्होंने अपना सिर घुमाकर अपनी पत्नी की आंखों से भरपूर आखें मिलाते हुए कहा—इस तरह बेकार समय नष्ट करना मुझे नहीं सुहाता। जानती हो मुझे कल चेम्बर में भाषण करना है।

नन्दिता देखती है कि पति की यह बात सुनकर वह उठी थी और गलीचे पर जैसे रेंगती हुई उसकी कुरसी के पास पहुँच कर और उसका एक डंडा पकड़ कर घुटनों के बल वहीं बैठ गयी थी। उसकी नसों में भी अभिजात वंश का रक्त प्रवाहित होता था। परन्तु उसके आचरण में औद्धत्य का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता था। उसका विनय गुलामों को मात करता था और उसकी मुद्रा उस माता जैसी थी जो अपने पुत्र को ढारस बँधाने के लिए उसके पास आ बैठी हो। उसने कहा—यदि इस अधिवेशनमें तुम भाषण न करो तो क्या हानि है। इधर तुम्हारा स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहा है।

स्वास्थ्य ठीक हो या न हो। कर्तव्य सर्वोपरि है। मुझे जाना ही होगा।

अच्छी बात है, जाना । मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगो परन्तु आज रात भर तो आराम करो । —नन्दिता ने अनुनय के साथ कहा ।

नरपुंगव पुनः गरजे— आराम हराम है । नहीं जानती यह हमारे प्रधान मन्त्री का नया नारा है । इस वक्त देश को आराम की नहीं, काम की जरूरत है । और काम की यह हालत है कि मैंने अपने भाषण के लिए जो नोट्स तैयार किये उनका कहीं पता ही नहीं लग रहा है ।

नरपुंगव की आँखें चमक उठीं । बोले—मेरे नोट्स कहाँ गये, क्या हुए, मैंने कहाँ रख दिया ।

नन्दिता की मुख-मुद्रा भयभीत सी हो गयी । ऐसी थकावट मालूम हुई जैसे वह सैकड़ों कोस पैदल चली हो । अभी दो ही वर्ष पूर्व उसकी गणना बम्बई की सर्व श्रेष्ठ सुन्दरियों में की जाती थी । उसकी वह सुन्दरता उसकी बुद्धि के विकास के साथ और भी अधिक मनाहारिणी हो गयी थी । परन्तु इस समय उसके मस्तक पर सिकुड़न है । उसकी वह मुस्कराहट जिसकी उपमा गुलाब के खिलने से दी जाती थी इस समय विषादपूर्ण है । उसके शरीर का चमड़ा भी जैसे सिकुड़ गया है । वह आज रात बूढ़ी हो गयी है । उसने धड़कते हुए कलेजे से नरपुंगव की आवाज सुनी—शायद खो गया । सारा परिश्रम व्यर्थ गया । तीन रात जाग-जाग कर, खून को पानी बना कर, मैंने जो चीज तैयार की थी, उसे तुमने खो दिया । खैर कोई बात नहीं । इसकी सजा तुम्हें जरूर मिलेगी । मैं अपना भाषण लिखाता हूँ । तुम लिखो ।

नरपुंगव के नेत्रों में बच्चों की सी शरारत नाच उठी ।

यह जानते हुए भी उसने कुछ नहीं कहा कि इधर महीने भर के भीतर उन्होंने कागज से कलम का स्पर्श तक नहीं कराया है। वह कागज कलम लेकर सामने बैठ गयी। नरपुंगव ने अपना भाषण लिखाना आरम्भ किया। नन्दिता लिखती जाती थी और रोती जाती थी। कहीं नरपुंगव उसकी आँख का पानी देख न लें इसलिए उसने अपना सिर एकदम झुका लिया। भाषण समाप्त हुआ। नरपुंगव का सिर एक ओर झुक गया। वे खर्राटे लेने लगे। नन्दिता बैठी प्रतीक्षा करने लगी कि वे कब जागें और वह कब उन्हें उनके पलंग पर सुला कर सोने जाय।

सवेरा हुआ तो नरपुंगव सेठ रणछोड़दास ने चेम्बर जाने की तैयारी शुरू की। उस दिन नन्दिता ने स्वयं अपने काँपते हाथों से उनके लिए चाय बनायी। चायपान कर सेठ जी चेम्बर गये। अपना भाषण पढ़ा जिस पर सदा की भाँति खूब तालियाँ बजीं। परन्तु भाषण का अन्त होते-होते उनके पैर लड़खड़ाये, ढीले हाथों से कागज छूटकर जमीन पर गिरा और स्वयं सेठजी भी जमीन पर गिर पड़े। बेहोशी की हालत में उठाकर घर लाये गये। तब से जो खाट पकड़ी तो आज खाट समेत ही उठाये गये।

सोचते-सोचते नन्दिता को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सेठ उसी कुरसी पर उसी दिन की तरह बैठे उसे घूर रहे हैं। वह लेटी न रह सकी और चादर फेंक उठ खड़ी हुई। उसी समय नौकर ने आकर खबर दी कि के० एल० कलमवाला आये हैं। नन्दिता नौकर के साथ चल कर ड्राइंग रूम में आयी। उसे देखते ही कलमवाला उठ खड़े हुए और समवेदना प्रकट करते हुए बोले—मुझे बहुत अफसोस हुआ नन्दिताजी, मुझे आप के दुख में आपसे पूरी-पूरी सहानुभूति है। ईश्वर सेठजी की आत्मा को शांति-

प्रदान करे। इस तरह बैठे रहने से तो दुख और भी बढ़ेगा। अच्छा होता आप बाग में थोड़ा टहल लेतीं। और नन्दिता उसके साथ बाग की ओर चली।

बाग के एक कोने में बैठा हुआ सुमन्त शव यात्रा देख लेने के बाद उसकी रिपोर्ट तैयार कर रहा था। रिपोर्ट समाप्त हो चुकी थी। उसने सद्यो विधवा नन्दिता का बड़ा ही करुणापूर्ण विवरण प्रस्तुत किया था परन्तु चित्रा का आदेश उसके कानों में गूँज रहा था कि शीर्षक कारुणिक लगाना। और कौन सा शीर्षक कारुणिक होगा इसी पर वह विचार कर रहा था कि उसकी दृष्टि नन्दिता पर पड़ी। वह कलमवाला के हाथ में हाथ दिये रविश पर टहल रही थी। सुमन्त को कलमवाला के सम्बन्ध में कोई जानकारी न थी अतः उसने समझा कि यह कोई संबन्धी है जो समय पर न आ पा कर अभी आया है, और नन्दिता के प्रति समवेदना प्रकट कर रहा है।

मेंहदी की भाड़ी के पीछे बैठे सुमन्त को न नन्दिता ही देख सकी और न कलमवाला ही देख पाया। टहलते टहलते दोनों मेंहदी की भाड़ी के सामने आ खड़े हुए। अब सुमन्त उनकी बातचीत भी स्पष्ट सुन सकता था। उसने सुना भी कलमवाला नन्दिता से कह रहा है—नन्दिता मैं बहुत खुश हुआ कि तुमने अपना वचन पूरा कर दिया। अब साल छ महीने बाद तुम मुझ से विवाह करने के लिए स्वतंत्र हो।

मैंने भी तो तुमसे कह दिया था कल्याण, कि हम दोनों का प्रेम घृणा में ही फूल फल सकेगा। तुम हो पत्नीहन्ता। इसलिए मैं तुमसे उतना ही घृणा करती हूँ जितनी सेठ से करती थी। मैं हूँ पतिघातिनी। अतः यदि तुम मनुष्य हो तो मुझसे घृणा करोगे ही। हम लोगों की इसी पारस्परिक घृणा को दुनिया उसी प्रकार

प्रेम कहेगी जैसे सेठ के प्रति मेरी घृणा को वह प्रेम पुकारती रही ।

नन्दिता की बात सुनकर एकबार तो कलमवाला के चेहरे का रंग उड़ गया परन्तु तत्काल सम्भल कर उसने कहा—नन्दिता, तुमने तो यह बताया ही नहीं कि कांटा तुमने कैसे दूर किया ।

यह काम मैंने उसी तरह सात दिनों में पूरा किया जिस तरह तुमने सात महीनों में किया था ।

उसकी चर्चा न करो नन्दिता । हम लोगों में तय हो चुका है कि वह घटना हम अपनी जवान पर न लायेंगे । केवल जैसे कि मैंने एक बार तुम्हें इतना सुनाया था वैसे ही तुम भी एकबार सुना दो । इसके बाद जीवन भर फिर मैं कभी इसकी चर्चा न करूंगा ।—कलमवाला बोला ।

नन्दिता ने सात दिन पूर्व उस रात की घटना सुनाने के बाद कहा कि उसी रात मैंने सेठ से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया । जो दवा तुम मुझे दे गये थे और जिसे मैंने तुम्हारे बार बार कहने पर भी उसे नहीं पिलायी थी वही दवा चेम्बर जाते समय मैंने उसे चाय में दे दी । वह बेहोशी की हालत में उठाकर घर लाया गया । कल रात मैंने डाक्टर को कहते सुना कि अब केस हाथ में आ गया है । आशा है अब ये उठ बैठेंगे । उसी समय मैंने निश्चय किया कि यह नहीं होने का । इन्हें तो मेरे हाथों मरना ही पड़ेगा । यही विचार कर जिस समय कमरे में मेरे सिवा और कोई न था । मैंने सिल्क की चादर से उसका गला कस दिया और देखते-देखते साँस रुक गयी । मैंने चादर गले से खोल ली और उसे आतिशदानमें जला डाला । उसके बाद अपने कमरे में आकर दस मिनट लेटी रही फिर अपनी दासी को बुलाकर कहा कि देख आओ सेठ जी की क्या हालत है ।

दासी ने देखा कि सेवा में नियुक्त नर्स आकर पुनः अपनी कुरसी पर बैठ गयी है। मैंने नर्स की अनुपस्थिति से लाम उठाया था। नर्स ने नाड़ी देखी और तुरत घर भर में खबर फैल गयी कि सेठ जी चल बसे। मैंने उसके गले में तुलसी की मोटी सी माला लपेट दी कि यदि गले पर दबाये जाने का निशान हो तो किसी को दिखाई न पड़ सके। बस इतनी ही तो बात है। परन्तु यदि अब कहीं तुमने मुझे धोखा दिया तो मैं कहीं की न रहूंगी। और नन्दिता फूट फूट कर रो उठी।

सुमन्त का हृदय घृणा से भर गया। उसने निश्चय किया कि इन नारियों की संगति में अब न रहूँगा। यही है मेरी अन्तिम रिपोर्ट मगर चित्रा ने कहा है कि कारुणिक शीर्षक लगाना। इस विवरण पर क्या शीर्षक लगाऊँ। और सहसा उसने कलम निकाल शव-यात्रा के विवरण के नीचे लिख दिया—बुलबुल के आंसुओं में है खुशबू गुलाब की।

३

तारा

तडिदा तारा का कनकलतिका का किमबला

आज तारा की थीसिस सफल हो गयी। दो वर्षों का लगातार परिश्रम आज सार्थक हो गया। ये ऐसी बातें हैं जिनके कारण तारा को स्वभावतः प्रसन्न होना चाहिये परन्तु न जाने क्यों वह आज जब से सोकर उठी है, अन्यमनस्क सी रही है।

माता ने उसकी उदासी का कारण पूछा। पिता ने उसकी मन-मलीनता पर चिन्ता प्रकट की और उसकी अनुपस्थिति में माता-पिता ने उसके

सम्बन्ध में कुछ परामर्श भी किया। पिता ने धीरे से कहा था— तारा इधर दिन-दिन न जाने कैसी होती जा रही है। इसके चेहरे पर हँसी तो दिखायी ही नहीं देती। माता ने पिता से भी अधिक धीमे स्वर में जवाब दिया—हँसी क्या खाक दिखायी दे। इसकी जितनी उमर में मेरी गोद में प्रकाश खेलने लगा था।

तारा की माता ने अपने सबसे बड़े बेटे प्रकाश का नाम लिया और बात का सिलसिला आगे बढ़ाया—व्याह हुआ होता तो अबतक उसकी गोद में भी दो बच्चे होते लेकिन तुम तो उसे न जाने क्या बनाना चाहते हो।

उसे हजारों में—लाखों में एक बनाना चाहता हूँ। प्रकाश को भी बनाना चाहा था—मगर वह केवल डिप्टी कलक्टर बन कर रह गया। विकास उससे भी बढ़ कर निकाला। बी० ए० में तीन साल फेल हुआ। वह तो कहो कि मैं उसका बाप था। इसलिए बेटा डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस बने मूछों पर ताव दे रहे हैं, नहीं तो क्लर्क भी मुश्किल से मिलती। मगर मेरी तारा, मैं जैसा चाहता था, वैसी ही निकली। सच कहता हूँ तारा की अम्मा, मैंने जबसे उसकी थीसिस पर उसके परीक्षकों की राय पढ़ी है मेरा रोआँ-रोआँ खुशी से भर गया है। अपने अपने ढंग से तीनों परीक्षकों ने तारा की प्रशंसा की है। परन्तु यह बात तीनों ने लिखी है कि ऐसे दुरुह विषय पर जिस सफलता के साथ यह निबन्ध लिखा गया है वह लेखिका की पैनी सूझ-बूझ, व्यापक अध्ययन और गहरे परिश्रम का परिचायक है। यद्यपि निबन्ध पी० एच० डी० डिग्री के लिए लिखा गया है परन्तु हम डि० लिट् डिग्री देने की सिफारिश करते हैं।

पुत्री की कृतबिद्यता पर गर्व से स्फीत होती हुई जननी ने अपनी कन्या के जनक से कहा—पहले तुमने यह बात क्यों नहीं

बतायी । जाकर महावीर स्वामी को सबासेर लड्डू चढ़ा आती । आज दिन भी अच्छा था, शनिवार !

‘तो अबसे क्या बिगड़ा है । चली जाओ ! मन्तू अभी न गया हो तो उससे कह दो कि रिक्शा लेकर पहले यहीं आये और बहूजी को महावीर स्वामी का दर्शन करा लाये !’—राय साहब ने अतिरिक्त उत्साह प्रदर्शित करते हुए कहा ! तारा की माँ ने प्रतिवाद किया—मन्तू तुम्हारा चौबीस घण्टे का नौकर तो है नहीं ! शाम अपनी बेटी को ला कालेज पहुँचाने और वहां से लाने के लिए उसे तुम पैंतीस रुपये माहवारी तनखाह देते हो ! फिर तो उसे स्वतंत्र रिक्शा चलाने की छूट है और फिर आज रात भी हो गयी है !

इससे क्या हुआ ? कोई ज्यादा रात नहीं है ! रह गयी मन्तू से वक्त-बे-वक्त काम लेने की बात ? सो मैंने बंगले में रहने के लिए क्या उसे मुफ्त कोठरी नहीं दी है ?

चलो रहने दो ! बहुत बढ़-बढ़ कर बातें न बनाओ ! वह कोठरी क्या तुमने आदमी के रहने के लिए बनवायी थी या अपने अलसेशियन कुत्तों की जोड़ी के लिए ? फिर भी मन्तू बेचारा बहुत खटता है ! तारा का तो जैसे वह निजी नौकर हो गया है !

—तुमतो जानती हो हो तारा की अम्मां कि मुझे आदमी की कितनी बारीक पहचान है । मैंने मन्तू को देखते ही पहचान लिया कि मूर्ख है तो क्या लेकिन आदमी मेहनती और ईमानदार है ! आखिर वही बात सामने आयी न ! असल में बात यह है कि आदमी पहचानने में मुझसे कभी गलती हुई ही नहीं !

तारा के बाप ! तुम्हें हाथ जोड़ती हूँ, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ ! मेरे सामने डींग न हाँका करो ! तुम्हीं ने न ताराको घरपर पढ़ाने के लिए उस पूरनचन्द को रखा था ! उसके कारण शहर भर में

जो थुड़ी-थुड़ी हुई सो तो हुई ही, बेचारी लड़की का दिल जैसे हमेशा के लिए बुझ गया। मैंने कितना कहा कि पूरनचन्द विद्वान है, सुन्दर है, कमाऊ है। उसके कारन मेरी बेटी को बदनामी भी उड़ चुकी, उसी से उसका ब्याह कर दो लेकिन तुमने मेरी एक न मानी। खेलने खाने की इस उमर में तारा के मुंह पर जब मैं जोगिनों जैसी गम्भीरता देखती हूँ तो मेरा कलेजा कचोटने लगता है।

—तुम तो बेबात की बात करती हो। अब तुमसे कौन बहस करे।

राय साहब समझ गये थे कि यदि बात आगे चली तो तारा की अम्मा की आंखें पहले तो आंसू वरसायेंगी और फिर जबान भी तड़क-तड़क कर बिजली गिराने लगोगी। अतः कल्याण इसी में है कि अब खसक चला जाय। अतः कुछ सोच कर बोले—कल सुबह मुझे जल्दी उठना है। इधर दस बज रहे हैं। मुझे सोने दो और तुम भी जाकर सो रहो।

राय साहब ने पलंग पर पाँव फैला कर गले तक चादर खींच ली और तकिये पर सिर जमाते हुए कहा—रोशनी बुझाती जाना।

तारा की अम्मा अपने पति को भलीभांति पहचानती थीं। समझ गयीं कि रायसाहब अपनी मूर्खताओं की आलोचना नहीं सुनना चाहते, इसीलिए उसे टाल रहे हैं। वह मुस्कराती हुई उठी और रोशनी बुझाती हुई निकल कर अपने कमरे में चली गयीं। वह यह भी जानती थीं कि अभी रायसाहब दो-एक घण्टे न सो सकेंगे कारण चिन्ता का जो मसाला वह दे आयी हैं वह उन्हें जल्दी सोने न देगा।

सचमुच यही हुआ। राय साहब करबटें बदलते हुए बारबार

सोच रहे थे कि वास्तव में भारी भूल हुई। ऐसी भूल १९३० ई० में पहले कभी न हुई थी। उन्हें सन् १९३० ई० का जमाना याद आया। कुल पचीस साल पहले की तो बात है। इसी शहर में, इसी सड़क पर जो उस समय महज एक गन्दी गली थी, इसी जगह अर्थात् जहाँ आज यह आलीशान बंगला है, उनका कच्चा दो मंजिला मकान था। राय साहब अपने बड़े भाई के साथ उस घर में रहते थे और बाहर चबूतरे पर टीन की छाजन के नीचे कटपीस कपड़ों की दुकान करते थे। बड़ा भाई घी का कनस्टर सिर पर लादे फेरी करता था।

कटपीस की दूकान होने पर भी आखिर वह कपड़े की ही दूकान थी और कपड़े की दूकान होने के कारण विलायती कपड़े की दूकान थी। वह विलायती कपड़े की दूकान थी इसलिए उस पर पिकेटिंग होना भी जरूरी था। पिकेटिंग होने के कारण उनका अपनी दूकान की रक्षा के लिए जिला मजिस्ट्रेट से भी मिलना आवश्यक हो गया और जिला मजिस्ट्रेट से उनके मिलने का मुहूर्त कुछ ऐसा शुभ था कि फिर तो जो जिला मजिस्ट्रेट जिले में आया, वह उनकी बातों के प्रभाव के किले में आया। देखते-देखते वह राय साहब की उपाधि से विभूषित हो गये। द्वितीय महायुद्ध छिड़ा तो कुत्तों और गिद्धों के लिए ही नहीं, राय साहब जैसों के लिए भी महामहोत्सव का अवसर आया। चोरबाजारी ने उन्हें बाजार का सबसे बड़ा साव बना दिया। कटपीस की दूकान की जगह खास चौक में 'वसन-प्रतिष्ठान' के नाम से कपड़े की भारी भरकम दुकान चल ही रही है।

आर्थिक प्रतिपत्ति ही नहीं, सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ी।

राय साहब तो हो ही गये थे । नगर में डिग्री कालेज खुला तो उसके भी मैनेजर बना दिये गये ।

स्वराज्य हुआ तो वह भी उनका साम्राज्य हुआ । कोयले, लोहे, कपड़े का परमिट उन्हें प्राप्त हुआ । राजनीतिक पीड़ित की सुविधाएँ उन्हें प्राप्त हुई । उनका बड़ा बेटा डिप्टी कलेक्टर और छोटा बेटा डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस हो गया । यह सब उनकी सुविचारित योजना का परिणाम था । उन्होंने सन् १९५० में फलने वाले फल का बीज सन् १९३० में ही रोप दिया था । म्युनिसिपैलिटी का चेयरमैन होने पर राय साहब ने अपना गरीबों का मुहल्ला विकास के नाम पर उजाड़ दिया था और अपने नवनिर्मित बंगले के चारो ओर खुला मैदान छोड़ दिया था अन्यथा यदि वह मुहल्ला बना रहता तो उसके निवासी भी बने रहते और यदि उसके निवासी बने रहते तो वे प्रत्यक्षतः न सही, लुके-छिपे तो कभी न कभी बता ही देते कि सन् ३० के ग्रीष्म की एक ऊमसभरी रात में राय साहब ने अपने बड़े भाई से क्या विश्रम्भ वार्ता की थी । वह बतलाता कि दोनों भाइयों ने यद्यपि गुप्त मन्त्रणा की थी परन्तु कण्ठ स्वर की यन्त्रणा के कारण वह गुप्त न रह पायी । ऊमस भरी रात थी, सभी जाग रहे थे । अतः उस गुप्त मन्त्रणा से भी सभी परिचित हो गए । राय साहब ने अपने भाई से कहा था— देखो भैया, तुम बड़े हो, मैं छोटा । इसलिए घर के मालिक तुम्हीं हो । समय बड़ा नाजुक आ गया है । कांग्रेस और अंग्रेज सरकार में लड़ाई चल रही है । अतः वह नीति गहो कि घर कोई जीते अपना लाभ हो । मैं सरकार की ओर रहूंगा क्योंकि मेरी कपड़े की दूकान है । तुम फेरी लगाकर घी बेचते हो, तुम कांग्रेस के हर जुलूस के पीछे फेरी लगाकर घी बेचा करो । लोग

समझेंगे कि तुम कट्टर कांग्रेसी हो । फिर तो ऐसे ही किसी जुलूस में गिरफ्तार होकर बड़े भाई जेल काट आये और छोटे भाई को राजनीतिक सुविधा का पात्र बना गये ।

वही छोटे भाई साहब पूरनचन्द के मामले में पूरे बेवकूफ बन गये । पूरनचन्द उनके कालेज में दर्शन और संस्कृत विभाग का अध्यक्ष था । उस वक्त तारा बी० ए० में थी । पूरनचन्द्र उसे घर भी पढ़ाने आता था । फिर इतिहास ने अपनी पुनरावृत्ति की । उदयन और वासवदत्ता, बिल्हण और उसकी शिष्या राज-कन्या की कथा पूरनचन्द और तारा की भी कथा बन गयी । पुनरावृत्ति में कसर इतनी ही रह गयी कि वासवदत्ता और राज-कन्या का भाग्य सीधा था और तारा का सितारा इस मामले में टेढ़ा । उसके पिता ही कुटिल राहु बन गये । राहु केवल पूर्ण चन्द्र को प्रसन्न है परन्तु रायसाहब जब राहु बने तो पूर्णचन्द्र के साथ ही उन्होंने तारा की भी कान्ति हरण कर ली ।

तारा भी अपने कमरे में लम्बी आराम कुरसी पर पड़ी-पड़ी मन ही मन कह रही है—बाबूजी ने अपनी तारा के बदन की कान्ति ही नहीं हर ली, उसके मन की शान्ति भी हर ली है । आज मेरी थीसिस स्वीकृत हो जाने की बात सुनकर कितने प्रसन्न हुए हैं परन्तु यह प्रसन्नता उन्हें किसके कारण प्राप्त हुई यह वे नहीं जानते । नहीं जानते कि जिला मजिस्ट्रेट से मेरी शादी करने की धुन में उन्होंने जिन बेचारे गुरुजी को जिलावतन कर दिया, यह उन्हीं का प्रसाद है । आखिर जिस समय बाबूजी इस नगर में कटपीस के मामूली व्यापारी थे, गुरुजी के पिता इस नगर के सबसे बड़े जमींदार थे मगर कांग्रेसी होने के कारण सन् ४२ में अंग्रेज सरकार की गोरी फौज ने उनका घर लूट कर सारा नकद माल साफ कर दिया और सन् ५२ में जमींदार होने के

कारण कांग्रेसी सरकार की काली पलटन ने जमींदारी छीन कर उनकी जमीन पर कब्जा कर लिया । बेचारे के सिर दो आँधियाँ आयीं । एक गोरी, एक काली । गोरी आँधी ने घर गिराया, काली आँधी ने मलबे को चौरस कर दिया । पिताजी ने द्वेष और लोभवश गुरुजी का सर्वनाश किया ।

तारा कुरसी से उठी और पलंग पर जा पड़ी । आखें बन्द कर लीं । बलपूर्वक इस अनुभव का प्रयत्न करने लगी कि अब नींद आ रही है ।

परन्तु आज जिस निबन्ध पर उसे डाक्टरेट प्राप्त हुई है उसके रचयिता का ध्यान किसी प्रकार भी उसके चित्त से उतर नहीं पा रहा है । 'शृंगार की दार्शनिक पृष्ठभूमि' का शब्द-शब्द बेचारे गुरु जी का लिखा हुआ था । हाय बेचारे बेमौत मारे गये ।

तारा लेटी न रह सकी । चूठ बैठी । पाँच साल पुरानी डायरी निकालकर एक पृष्ठ पढ़ने लगी—आज गुरु जी से बड़ी ही दिलचस्प और ज्ञान-गर्भ बातें हुईं । गुरुजी की बुद्धि अत्यन्त प्रखर है, पांडित्य अगार हैं लेकिन स्वभाव से बड़े ही भोले हैं । मैंने उनसे कहा कि गुरुजी नर-नारी का प्रेम संसर्ग स्वाभाविक है । सही है । परन्तु इसके मूल में आप कहते हैं कि वासना के अतिरिक्त और क्या है और वासना तो मन का विकार है । अतः वासना के अतिरिक्त भी तो कोई नर-नारी-संबन्ध का शाश्वत आधार होगा । उन्होंने हंसते हुए बात काटकर कहा—नर-नारी का मौलिक सम्बन्ध गोदी का है । नर-नारी एक दूसरे की गोद में रहने के भूखे हैं । नारी या तो पुरुष को बच्चा बना कर अपनी गोद में रखेगी । या स्वयं बच्ची बनकर उसकी गोद

में भूलेगी या प्रेयसी बनकर पुरुष के अङ्क में अपने को देकर उसे अपने अङ्क में ले लेगी। मैंने कहा कि योग वाशिष्ठ ने कहा है कि नारी शरीर...मेरी बात काट कर वे बोले—योग वाशिष्ठ क्या जाने नारी शरीर...मैंने भी उन्हें अपना वाक्य पूरा करने का अवसर दिये बिना ही अपने मन में ही कहा—ठीक ही तो है। नारी शरीर की बात तो कुछ भोग—वाशिष्ठ ही जान सकता है, योग वाशिष्ठ नहीं। तब गुरुजी ने गम्भीर स्वर में कहा—तारा, हो सकता है कि तुम्हारे नारीत्व के बाह्य विकास के समानान्तर मानसिक विकास न हुआ हो। एक न एक दिन तुम समझोगी कि नर-नारी एक दूसरे के पूरक हैं। एक का भी अभाव नर या नारी को उसके नरत्व या नारीत्व के गुणों से बंचित कर देता है। यह अभाव विषमय कांटा बनकर तन-मन को विषाक्त कर देता है। समझोगी, समझोगी। और तारा आज समझ रही है। वह आज जब से सो कर उठी है तभी से उसका मन चंचल है। आँखें खुलते ही उसने देखा था कि उसके कमरे में कबूतरों का एक जोड़ा खुली खिड़की से आ पड़ा है ! बालारुण की रंगीली रश्मि कमरे की चिकनी फर्श पर फिसली पड़ रही है ! कबूतरी गर्दन मोड़कर कबूतर की ओर देखती है ! उसकी आँखें अपनी सम्पूर्ण लुद्र गोलाई में पूरा चक्कर खा जाती हैं ! कबूतर गुदरगू करता हुआ गर्दन उठाये, छाती फुलाये उसकी ओर चलता है ! कबूतरी फुदक कर आगे बढ़ जाती है ! आगे आगे गोलाई में कबूतरी और उसके पीछे-पीछे कबूतर चक्कर काटते हैं ! सहसा कबूतर शीघ्रता से बढ़ता है और कबूतरी के आगे निकल जाता है ! फिर वहीं से सहसा घूमकर उसके सामने आता है ! चोंच में उसकी चोटी पकड़कर हलका सा झटका देता है जैसे डांट रहा हो कि ऐसे मत भागा कर

और फिर तुरत ही उसकी चोंच अपनी चोंच में लेकर गुटरगूँ करने लगता है ।

तारा की आँखें मदालस हो उठती हैं ! वह ताली बजाकर उन्हें उड़ा देती है ! परन्तु आज का दिन ही खराब है ! वह बरामदे में बैठी जलपान कर रही है ! देखती है कि सामने बरगद के वृक्ष के कोटर में रहने वाली समाज बहिष्कृत बंदरिया अपने दो तीन दिनों के जाये छौने के साथ खेल रही है ! गतवर्ष मुहल्ले में अपरिचित बानर समूह आया था और यह बंदरिया बिजली के खम्भे से गिरी थी ! जमीन पर कुछ देर ऐसे पड़ी रही जैसे मर गयी हो ! लोगों ने घड़ों पानी डाला ! वह पानी में पड़ी रही ! लोग चले गये ! थोड़ी देर बाद वह उठ बैठी और जब बानर मण्डली की ओर बढ़ी तो उसको बिरादरी के लोग जो अबतक मर्माहत से बैठे थे, अब मर्मभेदी चोत्कार के साथ उसपर टूट पड़े ! बंदरिया ने बरगद के कोटर में घुस कर अपने प्राणों की रक्षा की ! बानर-समूह चला गया, बंदरिया रह गयी !

दो तीन महीने बाद एक बन्दर भी वहीं गिरा और वह भी वैसे ही जाति बहिष्कृत हुआ । जो बन्दर अपने जाति भाइयों को खीसों देखकर भाग खड़ा हुआ था वही बंदरिया पर पूर्ण विक्रम के साथ झपटा था । बंदरिया ने आत्मसमर्पण कर दिया था । अब बच्चे हुए हैं । गृहस्थी बाकायदे बस गयी है !

गूलर के पेड़ के नीचे बहुत-सा गूलर पड़ा हुआ है । बन्दर बीनकर खा रहा है । बच्चे खेल रहे हैं । फिर बन्दर बंदरिया की गोद में सिर रखे धूप में पीठ किये सो जाता है । बंदरिया बड़े ही मनोयोग पूर्वक उसके बालों में से जूँ बीन रही है ।

इस दृश्य ने भी तारा को चंचल कर दिया था । सर्वाधिक चंचल

किया शाम ला-कालेज के दृश्य ने। वह किसी काम से जूरिस फ्रूडेन्स के अध्यापक के कमरे में गयी तो उसने देखा कि उसकी एक मात्र सहपाठिनी मिस मित्रा प्रोफेसर के गले में हाथ डाले खड़ी है। वह जल्दी से कमरे के बाहर निकल आयी। वह अत्यन्त चंचल हो रही थी। उसके पैर नहीं उठ रहे थे। वह थरथरा कर सीढ़ी पर बैठ गयी। मिस मित्रा भी भागी और सीधे छात्रावास में जाकर दम लिया। थोड़ी ही देर में तारा भी उठी, अपने रिक्शे वाले को बुलाया ! सुन्दर स्वस्थ सुमन्त रिक्शा लेकर हाजिर हुआ। यह पेशा अपनाने पर भी उसकी वंशगत उच्चता और उच्चतम शिक्षा का संस्कार उसके प्रच्छन्न रूप को दबाकर उसके माथे पर दमक रहा था ! तारा ने उसकी ओर आंख उठा कर देखा फिर तुरन्त आंखें नीची कर लीं। रिक्शे पर सवार हो गयी ! उसने देखा कि रिक्शे वाला शीशे में झुंककर उसको परछाई देख रहा है। उसने अपना मुँह फेर लिया।

ताराका मन चंचल है ! वह आज अनुभव कर रही है कि गुरुजी का कहना ठीक था—नर नारीका पूरक है। वह उठकर नीचे सुमन्त के कमरे की कोठरी में जाने के लिए सोढ़ियाँ उतरने लगी। तीन ही चार सीढ़ी उतर कर वह थम गयी। सोचने लगी कि मन्तू उसे देखकर चकित हो जायगा। वह भी उसके सामने कैसे खड़ी रह सकेगी। बाबूजी तुम्हारा सर्वनाश हो, उसने मन ही मन अपने पिता को शाप दिया। फिर भी हृदय का ताप ज्यों का त्यों बना रहा। उसने सीढ़ी के अन्धकार में अपने दाँत पीसे। उसका रोम-रोम पिता से बदला लेने के लिए मचल उठा। मनने कहा—यदि सुमन्त ने तुम्हारे संबंध की चर्चा कहीं की तो तुम्हारे बाप उसी तरह मुँह दिखाने योग्य बन रह जायेंगे जैसे पूर्णचन्द्र नहीं रह गया था।

वह नये उत्साह से भरकर सीढ़ियाँ उतरी। सहज लज्जा ने एक बार पुनः बाधा डालने का प्रयत्न किया। वासना का वेग उसे आगे खींच रहा था, सहज संकोच उसे पीछे ढकेल रहा था। वह दो तोन मिनट दुविधा में पड़ी हुई वहीं आँगन में खड़ी रही। उसके पैरों में हल्का-हल्का कम्पन और हृदय में जोरदार धड़कन थी। मनने पुनः कहा-अभी या कभी नहीं। जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाती हुई वह सुमन्त की कोठरी के दरवाजे पर जाकर पुनः ठिठकी।

काठ की चौकी पर कम्बल ओढ़े सुमन्त पड़ा था। रोशन-दान से उसने अपने सिरहाने की खिड़की खोल रखी थी जिसमें से होकर चन्द्रमा का प्रचुर प्रकाश कोठरी में आ रहा था। लालकालेज से तारा को यहाँ लाने के बाद प्रतिदिन की तरह वह भी सो नहीं सका। आज लेटते ही खराटे न भर सका। जिस समय आज वह तारा बीबी के लिए रिक्शा अगोरता हुआ कालेज के बाहर बैठा था, उसी समय उसका रिक्शा चालक मित्र पुनर्वासी राम आ गया। उसने कुछ ऐसी बातें की कि तारा के प्रति सुमन्त के मन में नये भाव पैदा हो गये। उसने उस दिग्गज तारा के आन पर उसकी आँखों में लालसा की लपटें उठते देखी थीं। सुमन्त ने मन ही मन कहा-वैसी आँखों से एक बार आँख मिला लेने के बाद फिर आँख को नींद जल्दी नहीं मिलती। उसका दिमाग गर्म हो उठा। उसने उस सर्दी में भी खिड़की खोल दी और ठीक खिड़की के सामने सर रखकर वह लेटे-लेटे ठण्डी हवा के झोंके अपने सिरपर लेने लगा। वायु की एक-एक लपट झपट-झपट कर नयी-नयी स्मृतियाँ लाकर उसके मस्तिष्क में झोंके दे रही थी। उसे किसी नारी से हृदय वृत्त होने का अनुभव कभी प्राप्त नहीं हुआ है। जैसे गुलाब जल की चार बूँदें शरबत के

गिलास में डाल देने से सारा शरबत सुवासित हो जाता है वैसे ही वह किसी नारी हृदय के स्नेह रस की दो चार बूँदें अपनी जीवन प्यालों में डालकर उसे सुवासित करने की अब तक कामना ही करता रहा है। उसे सुमित्रा जैसी अभिजातवंशीया रमणी ने धोखा दिया। उसे चित्रा जैसी धनी महिला ने चार सौ बीस पढ़ाया। उसकी अनपढ़ देहाती तरुणी पत्नी को यही पता नहीं है कि दुनियाँ में प्रेम नामक भी कोई वस्तु है। अब परम विदुषी तारा क्या करेगी, कौन कह सकता है। उसने सोचा सुमित्रा के कारण उसे प्राइवेट सेक्रेटरी का पद और एक नगर छोड़ना पड़ा। चित्रा के कारण एक दैनिक समाचार पत्र को सम्पादकी त्याग बम्बई जैसे नगर से बगदुट भागना पड़ा। अब इस छोटे से शहर में वह रिकशा चालक के रूप में जीवन बिता रहा है। अब कहीं तारा इसमें बाधक न बन जाय। व्याकुल सुमन्त ने तेल बत्ती जलायी और अपनी तकिया के नीचे से बिल्हण की रचना चौर पंचाशिका की एक खंडित प्रति निकाल उसका पाठ करने लगा। आज दो पैसे में वह यह पोथी कबाड़ी की दूकान से खरीद लाया था। वह सस्वर और सुस्वर पाठ कर रहा था कि किमिन्दुः किं पद्मं किमु मुकुर बिम्बं किमु मुखं [यह चन्द्रमा है, चमकता शीशा है या मुख है।] और तारा का मुख मंडल उसकी आँखों के सामने नाच उठा।

तारा डगमग पैरों से सुमन्त की कोठरी के दरवाजे तक पहुँच गयी थी। उसने देखा कि कोठरी का दरवाजा जरा खुला हुआ है। उसने सुना कि सुमन्त अपनी चौकी पर लेटा हुआ कुछ गुनगुना रहा है। उसने भाँक कर देखा। उसके चेहरे की झलक पाकर सुमन्त ने भी समझा कि मैं कल्पना के नेत्रों से तारा का चेहरा देख रहा हूँ परन्तु जब तारा

की आँखों से उसकी आँखें मिलीं तब उसके ओठों पर श्लोक ने अपना दूसरा चरण रखा—

किमब्जे किं मीनौ किमु मदन बाणौ किमु दृशौ
और वह परेशान हो उठा । [कमल हैं कि दो मछलियाँ हैं
कि काम के दो बाण हैं अथवा नेत्र हैं ।]

तारा ने देखा कि सामने सुमन्त के सिरहाने खुली खिड़की से पूर्णचन्द्र दिखाई पड़ रहा है । तारा को प्रतीत हुआ कि जैसे पूर्णचन्द्र व्यंग से खिलखिलाते हुए कह रहा है—कहो तारा अब समझ में आया न, कि प्रेम मन का विकार नहीं है ।

तथ्य की सत्यता स्वीकार करते हुए भी हठ-वश उसके मन ने कहा— है, है, है । प्रेम मन का विकार ही है और तारा सहसा वहाँ से घूम पड़ी । सुमन्त के मुख पर तीसरी पंक्ति थी ।

खगौ वा गुच्छौ वा कनकलशौ वा किमु कुचौ
[दो पत्नी हैं, दो गुच्छे हैं, दो स्वर्ण घट हैं या उरोज युग्म हैं ।]

तारा भागती हुई आकर अपनी शय्या पर धम से गिर पड़ी और फूट फूट कर रोने लगी । सुमन्त किताब फेंककर चौकी पर से उठ पड़ा । उसे दरवाजे पर नारी मूर्ति की इतनी स्पष्ट झलक मिली थी कि वह उसे अपनी कल्पना मात्र कहकर उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता था । उसने दरवाजा खोलकर बाहर झाँका । किसी को न देखकर पुनः दरवाजा बन्द करके सावधानी से सिटकनी लगाते हुए वह भुनभुनाया—भगवान जाने कौन था, बिजली की चिलक थी कि तारे की झलक थी कि सोने की कोई लता लहराकर झूमकर अदृश हो गयी । या कोई नारी थी । श्लोक की पूर्ति करते हुए वह भुनभुनाया—

तडिद्धा तारा वा कनकलतिका वा किमबला ।

यदि सा कनिता हृदये निहिता

अमृत के प्रत्येक प्याले में विष, प्रत्येक
रंगीले फूल में काँटा, घास के प्रत्येक
मैदान में साँप, प्रत्येक सरिता में
समुद्र जैसा खारी पानी और प्रत्येक
प्रेम में स्वार्थ का भाव देखकर
सुमन्त का मन समाज से विमुख हो
उठा। उसकी मनस्थिति कुछ ऐसी
हो गयी थी कि यदि उसकी बूढ़ी
माता और नवोढा पत्नी के पोषण
का भार उसके सिर न होता तो
जीवन-युद्ध में जूझने की समूची
शिक्षा के बावजूद वह तुलसीदास

जी का यह वचन सार्थक कर देता कि 'नारी मुई घर सम्पत्ति नासी मुँड़ मूड़ाय भये संन्यासी।' यतः देश में प्रचलित शिक्षा पद्धति के फलस्वरूप पढ़े लिखे आदमी के समक्ष पंचवटी की भाँति जीविका के लिए भी पंचवट ही अर्थात् वकालत, चिकित्सा, सम्पादन, अध्यापन और कलर्की ही बच रहते हैं अतः भारतीय युवक उन वट पत्रों पर पड़ा हुआ बाल मुकुन्द बना हुआ, अपना अँगूठा चूसता रहता है। फलतः सुमन्त भी दिन भर किसी न किसी शिक्षा संस्था में नौकरी खोजने और रात को रिक्शा चलाने लगा।

मुँह से बीड़ी का धुआँ उड़ते हुए जिस समय वह यह विश्वास करने का प्रयत्न कर रहा था कि यह बीड़ी का नहीं बल्कि उसके जलते हुए हृदय का धुआँ है उसी समय उसका रिक्शा चालक मित्र पुनवासी भी वहीं अपना खाली रिक्शा लिये आ गया और आते ही बोला—यार एक बीड़ी हो तो इधर टिकाओ।

सुमन्त ने जेब टटोल कर एक डिबिया निकाली और उसमें से एक बीड़ी निकाल कर पुनवासी के मुँह की ओर देखा। उसने देखा कि पुनवासी की आंखें लाल हो उठी हैं और उसके मुँह से महुए की शराब की गन्ध निकल रही है। उसने पुनवासी से कहा—क्यों यार तुमने तो वादा किया था कि अब शराब न पिऊंगा। फिर आज यह क्या।

किया क्या जाय, भाई, तुम्हारे कहने से हमने भी कसद किया था अब कभी हौली की आर मुँह न करेंगे लेकिन लवारी थी।—सुमन्त के मुँह की जलती बीड़ी से बीड़ी सुलगा कर और उसका कश खींचकर धुआँ छोड़ते हुए पुनवासी बोला।

‘मरदे आदमी कै बार तुमसे कह दिया कि मरद की जबान

एक ही होती है और तुमने मरद होकर अपनी जबान छोड़ दी।—कुछ प्रेमपूर्ण झिड़की के लहजे में सुमन्त ने कहा।

सुमन्त की झिड़की पर एक बार तो पुनवासी जरा भेंपा, परन्तु तुरत ही ठठाकर हँसते हुए बोला—अरे यार मन्तू, इतना बिगड़ क्यों रहे हो। पहले बात तो पूरी सुन लो।

रिक्शाचालकों के समाज में सुमन्त ने अपना नाम मन्तू बताया था जिस पर उस विज्ञ रिक्शाचालक ने कहा था कि तुम्हारे छोटे या बड़े भाई का नाम अन्तू होगा क्यों? और अपने माँ-बाप के इकलौते पुत्र सुमन्त ने उसके अनुमान की पुष्टि करते हुए उसकी विज्ञता की साश्चर्य प्रशंसा कर दी थी और उसी प्रशंसा ने पुनवासी को सुमन्त का घनिष्ठ मित्र बना दिया था। उसने कहा—फिर जल्दी कहते क्यों नहीं? न जाने कब लेक्चर खतम हो जाय और मेम साहब बाहर निकल आयें। तब तो मैं रुक न सकूँगा।

पुनवासी बोला—तो कहना यही है कि मरदानगी मरद में होती है। मैं तो मरद रहा नहीं कि मेरे पास मरदानगी रहे।

सुमन्त ने क्षण भर पुनः पुनवासी के चेहरे को गौर से देखा—यह भाँपने के लिए कि कहीं नशा तेज तो नहीं हो गया है जो वह इस प्रकार बहकी बहकी बातें कर रहा है। उसे इस प्रकार अपनी ओर निहारते देख पुनवासी पुनः हँसा और बोला—मैं तत्त्व की बात कहता हूँ मन्तू, कुछ पागल नहीं हूँ।

यह कहते हुए पुनवासी ने सामने से गुजरते हुए एक रिक्शे की ओर उँगली उठायी। रिक्शे पर उन्हीं दोनों का समवयस्क एक युवक एक युवती के साथ बैठा हुआ था। दोनों हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। पुनवासी ने अपनी बात जारी रखी—हाँ अलबत्ता वह मरद है क्योंकि उसके साथ औरत है।

पुनवासी की बातें सुमन्त को बेसिर पैर की प्रतीत हो रही थीं। उसने कहा—आज तुम्हें क्या हो गया है पुनवासी, तुम्हारी बात तो समझ में ही नहीं आती।

—यह मेरी बात नहीं है जो समझ लोगे। यह बड़े-बड़े पढ़े लिखे प्रोफेसर की बात है। हमारे तुम्हारे जैसे अनपढ़ क्या समझेंगे। लेकिन बात मुझे अच्छी लगी और मैंने याद कर लिया।

—किसी प्रोफेसर की बात कर रहे हो ?

—अरे इसी कालिज के। एक दिन दो प्रोफेसर मेरे रिक्से पर बैठे। उनमें से एक शायद कुँवारा था। इसलिए दूसरा उससे कह रहा था कि जल्दी ब्याह कर लो नहीं तो जिन्दगी भर नामर्द ही रहोगे। जब उसने कहा कि मैं तो अच्छा खासा मर्द हूँ, नामर्द कैसे रहूँगा तो उस प्रोफेसर ने कहा था कि इस दुनियाँ में अकेले-अकेले किसी चीज का मोल नहीं है। मीठा इसलिए अच्छा लगता है क्योंकि दुनियाँ में तीता भी है। गरमी का मोल सरदी के कारन है और धरती का मोल आकाश के कारन। उसी तरह मर्द का मोल दुनिया में इसीलिए है क्योंकि यहाँ औरत है। जैसे बिना मर्द औरत बेकार है वैसे ही औरत बिना मर्द मर्द ही नहीं है, नामर्द है।

सुमन्त स्वयं समझ रहा था कि ये बातें पुनवासी के मस्तिष्क की उपज नहीं हैं अतः उसका यह कहा सही मालूम होता है कि ये बातें उसने किसी प्रोफेसर से सुनी हैं। मगर इन बातों का पुनवासी से क्या सम्बन्ध। अतः आतुर होकर पूछ बैठा—तुम मुझ से कुछ छिपा रहे हो पुनवासी। जो कुछ तुम कह गये वह सब भरे पेट की बातें हैं। जो महीने की पहिली तारीख को

हजार पाँच सौ का चेक भुनाया करते हैं उनकी बात सोचने से हमरा सुमरा का काम नहीं चल सकता । यहाँ अपना तन तो चलता ही नहीं उसपर एक औरत भी जुटा लें तब तुम्हीं कहो कि कंगाली में आटा गीला हुआ कि नहीं ।

पुनवासी एक चोट फिर हँसा । जो भर हँस लेने के बाद संयत हुआ तो प्रतिक्रिया स्वरूप अत्यन्त गम्भीरता से बोला—मन्तू, एक बात गांठ बांध लो । हजार हो अभी तुम मुझ से छोटे ही हो । तुम दुनिया देखने आज निकले हो । मैं तुमसे दस बरस पहले से देख रहा हूँ । मैं तुम्हें बताता हूँ—

और यह कहते कहते पुनवासी का कंठस्वर अपने आप धीमा हो गया जैसे वह कोई गोप्य-गोप्य—महागोप्य बात कहने जा रहा हो । वह अपना मुँह सुमन्त के कानों के अत्यन्त समीप करता हुआ फुसफुसाया—कोई अपना बस चलते औरत नहीं रखता । परेम सब कुछ कराता है । लेकिन भैया, पेट की आग सरबोपरी । उसमें परेम भी जर जाता है ।

पुनवासी ने लम्बी सांस ली और चुप हो रहा । सुमन्त ने हैरान होकर एक बार पुनवासी के चेहरे पर टटोलती हुई दृष्टि डाली । पुनवासी ने सुमन्त की आँखों के समानान्तर आँखें भिड़ाकर कहा—‘सच कहता हूँ मन्तू’ और उसकी आँखें मुस्कराने लगीं ।

सुमन्त भी मुस्कराया । पुनवासी कहने लगा—सच कहता हूँ मन्तू, परेम के नाम पर भूख को छोड़ औरत और दुनिया-भर के सब कलेस उठा सकती है । मरद की मरदानगी इतनी ही है भैया कि अगर वह औरत से परेम करे तो चाहे उसे नंगी भले रखे, लेकिन भूखी कभी न रखे ।

—यह भी किसी प्रोफेसर की बात है क्या पुनवासी ? मैं फिर कहता हूँ कि तुम कोई बात मुझसे छिपा रहे हो । जल्दी कह दो नहीं तो मेरी मेम साहब आता ही होंगी और बात अधूरी रह जाने से मुझे रात भर न नींद आयेगी, न खाना पचेगा ।

—मन्तू मैंने निश्चय किया है कि तुमसे कोई बात न छिपाऊँगा क्यों कि तुम चाहते हुए भी अपने आपको मुझसे नहीं छिपा सके हो । सम्भवतः तुम्हारा नाम मन्तू नहीं, सुमन्त है ।

पुनवासी ने भाषा का रंग और कहने का ढंग दोनों एक साथ बदलते हुए कहा और सुमन्त चौंक उठा । मन ही मन अत्यन्त विस्मित हुआ और जब रहा नहीं गया तो पूछ बैठा—मेरा नाम कैसे जाना भाई ।

—वह कोई बात नहीं । देखो शायद, तुम्हारी मेम साहब आ गयीं । मालकिन के प्रति इसी प्रकार भक्ति बनाये रखो । इस प्रकार की भक्ति भी कभी-कभी वरत्न प्रदान कर देती है । पुनवासी ने वरत्न शब्द पर जो हुमुच कर जोर रख दिया तो सुमन्त उस बोझ से मुक्त गया । एक नारी सामने से निकल कर चली गयी । वह मन्तू की मेम साहब नहीं थीं । अतः सुमन्त ने कहा—आप कौन हैं सच-सच बताइये ।

सुमन्त के प्रश्न में बच्चों का आग्रह था । पुनवासी मुस्कराया । इधर-उधर देखा और अपने रिक्शे की गद्दी बठाकर उसके नीचे से उसने एक अर्द्धा बोतल निकाली । वसी चौकन्ने भाव से उसने उसे मुँह से लगा कर गटागट चार-छ घूँट निर्जल गले के नीचे उतार लिया और फिर उसे जतन से बन्द करते हुए यथा स्थान रख अंगौछे से मुँह पोंछते हुए कहा—सुमन्त मैंने जिस प्रोफेसर का चर्चा की है उनका नाम डाक्टर पूर्ण

चन्द्र था। आज से चार वर्ष पूर्व यही नगर प्रोफेसर पूर्णचन्द्र का नाम उठते बैठते जपता था।

सुमन्त ने यशस्वी प्रोफेसर का नाम सुन रखा था। अतः और भी सश्रद्ध होकर सुनने लगा।

अपनी मैली बगड़ी की भीतरी जेब में हाथ डाल कर एक अखबार के टुकड़े में लपेटा हुआ पोस्टकार्ड बाहर निकालते हुए छोटी सी लालटेन के धुँधले प्रकाश में रिकशे की हैंडिल में लगे हुए शीशे में अपना मुँह देखते हुए वह खुल कर हँसा और कहने लगा—जिसकी एक आँख फूटी हुई हो, चेहरा चेचक के दागों से इस प्रकार भरा हो जैसे सिल कूटी हुई हो। सिर के आधे बाल उड़ गये हों और आधे पकने पर आ गये हों ऐसे मुझ जैसे आदमी के मुकाबले यह तस्वीर रख कर यदि कोई पूछे कि यह किसका चित्र है तो लोग बे खटके कह देंगे—पूर्ण चन्द्रका।

और उसने फोटो से अखबार का टुकड़ा अलग करते हुए उसे सुमन्त के हाथ में दे दिया। सुमन्त ने देखा कि चित्र एक ऐसे तरुण का है जिसका रङ्ग अत्यन्त गौर है। बदन भरा हुआ और ललाट चौड़ा है। अरुण ओष्ठ पर निकलती हुई मूँछ की हलकी सी मसि-लेखा। वह बोला—सचमुच पूर्णचन्द्र का चित्र है।

हाँ, मानता हूँ। इसके सिवा इस नगर में सुझे और कोई सूरत दिखाने का अधिकार ही नहीं रह गया।—पुनवासी बोला।

—परन्तु आपको इस नगर से भागना क्यों पड़ा? सुमन्त ने कुछ अनुमान लगाते हुए पूछा।

पुनवासी फिर हँसा। आज उसे हर बात हँसकर कहने की धुन सवार हो गयी थी। बोला—इन्हीं की कथा है भाई। तब यहाँ

विश्वविद्यालय नहीं था। एक बड़ा मशहूर डिग्री कालेज था उसी में डाक्टर पूर्णचन्द्र दर्शन विभाग के अध्यक्ष थे। चार वर्षों में ही उन्होंने उस नगर में ही नहीं दर्शन शास्त्र के एक विद्वान् के रूप में देश भर में थोड़ी बहुत ख्याति अर्जित कर ली थी। मगर मैं तुम्हें एक श्लोक सुनाऊँ—

उडुराजमुखी मृगराज-कटि-र्गजराज-विराजित मन्द गतिः
यदि सा वनिता हृदये निहिता क जपः क तपः क समाधि-रतिः ।

सुमन्त मुस्कराया। पुनवासी का विवरण चलता रहा—कालेज में एक लड़की बी० ए० प्रथम वर्ष में भरती हुई। उसने अन्य विषयों के साथ दर्शन भी पाठ्य विषय चुना। उसका नरु सिख कैसा था यह तो मैं तुम्हें बता ही चुका—बिलकुल क्लैसिकल उडुराजमुखी माने चन्द्रमा जैसे मुख मंडल वाली, मृगराज सी—शेर की सी कमर और हाथी सी चाल वाली कोई बाल यदि मानस के अन्तराल हं जाय तो जप कहाँ, तप कहाँ और समाधि की भी सुधि कहाँ। रूप दर्शन होने पर हमें अरूप दर्शन भूत जाता है। यहाँ भी वही दशा हुई। पूर्णचन्द्र उसकी ओर मुँह धीरे-धीरे बात फैली। पहले छात्रों में गुदुरंगू हुई, फिर सहयोग प्राध्यापक चहके और अन्त में प्रबन्ध समिति ने काफी काँव-काँव करने के बाद उनकी निन्दा का प्रस्ताव ग्वीकार करते हुए उन्ने पद मुक्त कर दिया। जानते हो क्यों ?

सुमन्त ने जिज्ञासा भरी आँखों से पुनवासी की ओर देखा पुनवासी दम लेकर आगे बढ़ा।

—प्रकट आरोप तो यह था कि उन्होंने स्वयंसेवक संघ कं कवायदों में भाग लिया है और कालेज के छात्रों में भी वे उससे सिद्धान्तों का प्रचार करते रहते हैं। चूँकि उक्त संस्था से

सरकार विमुख थी अतः पूर्णचन्द्र के खग्रास ग्रहण पर किसी ने सहानुभूति की सिसकारी तक न मारी ।

—और वास्तविक कारण ? सुमन्त ने गहरी उत्सुकता प्रकट करते हुए पूछा ।

—वास्तविक कारण एक नाटक था जिसके अभिनय की व्यवस्था प्रोफेसर ने प्रबन्ध समिति के आग्रह पर की थी ।

—फिर भी इस तरह निकाले गये ! सुमन्त ने आश्चर्य प्रकट किया । उसका समाधान करते हुए पुनवासी ने बताया—प्रोफेसर पूर्णचन्द्र ने नायक की भूमिका स्वयं ग्रहण की थी और नायिका की भूमिका अपनी प्रिय छात्रा को दी ।

सहसा पुनवासी की बात काटते हुए सुमन्त ने कहा कि आप तो बहुत चतुर आदमी हैं । एक अपरिचित प्रोफेसर पूर्णचन्द्र की कथा सुनाकर आपने मुझे भुलावा दिया और यह मुझे नहीं बताया कि आपने मुझे वचन देने के बावजूद मदिरा क्यों पी ।

—चतुर मैं नहीं, तुम्हीं हो । अपने लक्ष्य पर दृष्टि जमाये रहते हो । अच्छा सुनो, पिछले हफ्ते की बात है । चौमुहानी के कान्स्टेबल से मेरी कुछ झक झक हो गयी । उसने मेरी चालान कर दी । सभी यही करते हैं । मजिस्ट्रेट ने ठोंक दिया दस रुपया जुर्माना । मैं जब मजिस्ट्रेटों के सामने जाता हूँ तब मुझ पर जुर्माना होता ही है, घर पर भोजन के अभाव में गम खाना होता ही है । ऐसी ही हालत में परसों शाम कचहरी में जुर्माना चुका कर पांच दिनों का भूखा मैं घर गया तो देखा कि बीबी मौजूद नहीं है । पड़ोसियों से पूछा तो मालूम हुआ कि कल शाम को वह एक रंगीले युवक के साथ जिसे वह अपना भाई बताती थी, अपने नइहर चली गयी ।

पुनवासी रुक गया । गहरी वेदना के चिन्ह उसके चेहरे पर

उभर आये। थोड़ी देर बाद सिर झुकाये हुए बोला—मैं खूब जानता हूँ सुमन्त, न उसका कोई भाई है और न उसका कहीं नश्वर है। मैं यह भी जानता हूँ कि वह किसी मर्द के साथ नहीं भागी है। एक औरत के साथ भागी है—तुलसीदास के 'नारि न मोह नारि के रूपा' वचन को झूठा प्रमाणित करती हुई। उस स्त्री का नाम जानते हो ? बोलो—

—नहीं, सुमन्त ने कहा।

—मैं जानता हूँ, पुनवासी ने विश्वास के साथ कहा। सुनो उसका नाम है—, भूख ! वह भूख के साथ भाग गयी। इसी लिए मैंने कहा था कि मेरी मर्दानगी चली गयी इसलिए मुझे वचन तोड़ने का अधिकार मिल गया। समझे !

पुनवासी एकदम चुप हो गया। पूस महीने की रात में हवा का तीखा झोंका, जैसे एक तो नुकीला वाण और फिर जहर में बुझाया हुआ। कुहासे से पृथ्वी आकाश एकाकार। विश्वविद्यालय के हीरा-हाल के सामने वृक्ष की छाया में अपने रिक्शे खड़े कर कृष्ण त्रयोदशी की रात और कुहासे के ताने-बाने से बुना हुआ अन्धकार का कम्बल ओढ़े एकही रिक्शे पर पुनवासी और सुमन्त दोनों ही एक दूसरे से सटे हुए दुबके बैठे थे। सुमन्त ने पुनवासी के मन की पीड़ा पहचान ली थी। वह जानता था कि अधिक हिलाने-डुलाने से यह घाव और भी टीसेगा। रोगी रह-रह कर दाँत पीसेगा।

हवा का एक करारा झोंका आया। सिर के ऊपर पेड़ के पत्ते हरहराये। पैर के नीचे जमीन पर सूखे पत्ते चरमराये। पुनवासी का शरीर गनगना उठा। वह सुमन्त से जरा और सट गया ! सुमन्त ने कहा—

मैं तो यहां इस समय आने का इसलिए कष्ट उठाता हूँ कि पैतीस

रुपये मासिक पर मैंने उन्हें शाम के ६ बजे उनके घर से ला-कालेज लाने और रात साढ़े नौ बजे फिर घर पहुँचाने का ठीका ले चुका हूँ परन्तु आप मेरे लिए यहां आकर क्यों तकलीफ उठाते हैं। आप जानते हैं कि इस कालेज के सभी छात्र छात्रा-वास में रहते हैं। केवल हमारी मेम साहब अपने घर से आती हैं। उनके लिए मेरा रिक्शा है ही, फिर भी यह जानते हुए कि यहाँ से वापसी सवारी न मिलेगी आप मेरे लिए आकर कष्ट उठाते हैं।

सब परमार्थ ही नहीं है, सुमन्त, कुछ स्वार्थ भी है। बड़ा जाड़ा है। एक बीड़ी और तो दो।—सुमन्त ने एक बीड़ी निकाल कर पुनवासी को दी और दूसरी अपने लिए सुलगायी। दोनों चुपचाप बीड़ी पीने लगे।

सन्नाटा तोड़ते हुए सहसा पुनवासी ने लम्बी साँस खींची और कहा - वह मुझे बहुत प्यार करती थी सुमन्त, बेचारी को भूख ने भगा दिया।

सुमन्त ने पुनवासी का ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट करते हुए पूछा—प्रोफेसर पूर्णचन्द्र ने उस नाटक में क्या कर दिया था।—और तो मुझे नहीं मालूम, उस नाटक की नायिका का नाम था रानी ताराबली। नाटक के बाद लोग उन्हें पूर्णचन्द्र की जगह तारापति कहने लगे थे। संयोग से लड़की का असली नाम भी तारा ही था।

पुनवासी कहते-कहते सहसा रुका और फिर झटके के साथ पूछ बैठा—क्यों सुमन्त, तुम्हारी मेम साहब का भी तो नाम तारा देवी है ?

सुमन्त ने उत्तर दिया—हां। एम० ए० पास कर चुकी हैं। अब कानून के अध्ययन के साथ ही शोध-कार्य भी कर रही हैं।

—सो तो है ही । मैंने इसलिए पूछा कि तारा नाम वाले जरा खतरनाक होते हैं । उन्हें जो अपनी आंख का तारा बनाता है उसके हाथ में वे एकतारा थमा देते हैं । इसलिए कहता हूँ कि सावधान रहना, कहीं मेरी बीबी की तरह वह भी न भाग निकले ।

—पत्नी-वियोग का आपको बहुत दुख है, यह मैं समझता हूँ । इसीलिए आप घूम फिरकर उसी विषय पर आ जाते हैं ।

—ठीक कहते हो सुमन्त । मेरी पत्नी ने मेरे साथ बड़ा कष्ट उठाया परन्तु पूर्णचन्द्र की तारा की तरह मेरी बुधिया ने कभी न कहा कि प्रेम मन का विकार है । जैसे शरीर के अन्य विकारों की चिकित्सा की जाती है वैसे ही इस विकार का लक्षण प्रकट होते ही उसकी समुचित चिकित्सा होनी चाहिये । तारा की यह बात सुनकर बेचारा पूर्णचन्द्र बिलबिला उठा था । उसने चीख कर कहा था—तारा, रङ्गमंच पर तुमने मेरी छाती में नकली छुरा भोंक दिया था, इस समय पीठ में असली छुरा चुभा रही हो । समझे सुमन्त, उस नाटक में नायिका नायक को जान उसकी छाती में छुरा मार कर लेती है ।

सुमन्त—वह कैसा नाटक था ?

पुनवासी—फिर कभी दे दूँगा । नाटक की एक प्रति मेरे पास है ।

सुमन्त—आपके पास है ?

पुनवासी—हां भाई, मैं ही प्रोफेसर पूर्णचन्द्र हूँ । हटो मुझे चतरने दो । रिक्शा लेकर पोर्टिको में जाओ । तुम्हारी तारा, आ रही है—मेरी तारा आ रही है ।

सुमन्त मिनट भर पुनवासी उर्फ पूर्णचन्द्र की ओर एकटक देखता रहा और फिर रिक्शा लेकर पोर्टिको की ओर बढ़ा ।

पुनवासी की आँखें नशे के पानी में तैर रही थीं ।

शशिना सह याति कौमुदी

- १—रघुनाथ सिंह (द्वितीय) —विष्णुपुर के शासक ।
 २—गोपाल सिंह —वृद्ध मन्त्री ।
 ३—ताराबली —रघुनाथ सिंह की पट्ट-
 महिषी ।
 ४—लाल बेगम —रहीम खाँ की पत्नी,
 रघुनाथसिंह की उपपत्नी ।
 ५—मीना —लाल बेगम की दासी ।

“शङ्ख ध्वनि के साथ पटोत्तोलन ।

मूक आरती—नृत्य चल रहा है ।

नेपथ्य से आवाज आ रही है ।

ईसा की अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सम्भवतः १७७२ ई० के आस-पास विष्णुपुर जिले के (आजकल जिसे बाँकुड़ा) कहते हैं, राजा रघुनाथसिंह ने मुगल सम्राट का पक्षावलम्बन कर विद्रोही शोभा सिंह और रहीम खाँ से युद्ध किया। शोभासिंह पराजित हुआ और रहीम खाँ युद्ध में मारा गया। रघुनाथसिंह ने शोभासिंह की पुत्री तारावली से विवाह कर उसे अपनी पट्टमहीषी बनाया और साथ ही रहीम खाँ की विधवा लाल बेगम को भी अन्तःपुर में डाल लिया। धीरे-धीरे लाल बेगम का प्रभाव चढ़ने बढ़ने लगा। यहाँ तक कि उसके कहने से राजा ने धर्म-परिवर्तन करना भी स्वीकार कर लिया। सारी प्रजा को भी साथ ही धर्म-परिवर्तन करने का आदेश मिला। परिणाम स्वरूप विद्रोह हुआ। सन् १८६६ ई० में बाँकुड़ा के विध्वस्त महल के तलाब की खोदाई में जंजीरों से जकड़ा एक नर कंकाल और कुछ मुसलमानी बरतन निकले।”

कथा—पीठ की सूचना समाप्त होते ही आरती नृत्य भी समाप्त हो जाता है। दूसरा परदा उठता है।

[विष्णुपुर के राजकीय प्रासाद का उद्यान। निखरी बिखरी चाँदनी में पद्म-हृद लहरा रहा है। बकुल वृक्षों की भीनी-भीनी सुगन्ध से आमोदित मन्द-मन्द गन्धवाह। एक ओर मालती-कुञ्ज। बीच में स्फटिक शिला है। उस पर हीरे सी सुराही, जिसमें तरल लालिमा छलक रही है। नलम की प्यालियाँ। रेशम की डोर में पड़ा हुआ मूला। तीव्र निस्तब्धता। एक ओर से एक पुरुष और दूसरी ओर से एक नारी का प्रवेश।]

पुरुष—कौन ?

नारी—मैं !

पुरुष—क्या महारानी ? आप आ गयीं ?

नारी—पिता के समान स्नेह की लोरियाँ सुनाने वाले वृद्ध मंत्रो के आवाहन की उपेक्षा कैसे करती। बताइये, आपने इस अर्द्धरात्रि को मुझे सपत्नी के आवास में आने के लिए क्यों विवश किया है।

मंत्रो—महारानी तारावली, सचमुच मैं तुम्हें अपनी तनुजा के तुल्य ही मानता हूँ। इसीलिए मैंने तुम्हें सूचित किया था कि अब मुझ वृद्ध के दुर्बल हाथों में शासन की गाड़ी खींचने की शक्ति नहीं रही। अतः मैं काशीवास करने जाना चाहता हूँ। आपने कहा था कि गोपाल सिंह से पूछो कि उसे बुद्धि-भ्रंश हो गया है क्या? देवी! गोपाल सिंह की बुद्धि नष्ट नहीं हुई है।

राना—यह मैं जानती हूँ मंत्रिवर! परन्तु क्या इतनी ही बात कहने के लिए इस समय मुझे यहां बुलाना आवश्यक था।

गोपाल—यह कहने के लिए नहीं देवि! प्रत्युत आपको उत्तर देने के लिए कि मैं राज्य का मन्त्रित्व ही नहीं, यह राज्य ही नहीं सारा वंग देश क्यों छोड़ देना चाहता हूँ। इसका प्रत्यक्ष कारण दिखाने के लिए बुलाया है।

तारा—मुझे पहेलियाँ बूझने का अभ्यास नहीं है। स्पष्ट शब्दों में अपना अभिप्राय बताइये।

गोपाल—वह तो बता चुका हूँ महारानी। मैं अब इस राज्य का मन्त्री न बना रह सकूंगा। यह राज्य छोड़ दूंगा। यह देश छोड़ दूंगा। अपना पैतृक निवास छोड़ दूंगा।

तारा—यह सब आप क्यों करेंगे।

गोपाल—वही बताने के लिए ही तो आपको यहाँ आने का कष्ट दिया है परन्तु देवी आप सचमुच नहीं जानती अथवा सब कुछ जानती हुई अनजान बनने का अभिनय कर रही हैं।

तारा—वृद्ध मन्त्री, आप मेरा विश्वास करें। मैं आपकी बातों का अर्थ बिलकुल नहीं समझ रही हूँ।

गोपाल—राजधानी में हाहाकार मचा हुआ है। व्रत प्रजा देश छोड़ कर भागी जा रही है। धर्म-नाश के भय से घरों के चूल्हे ठण्डे हो गये हैं। क्या महारानी यह सब नहीं जानती।

तारा—जान भी कैसे सकती हूँ, मन्त्रिवर ! सुवर्ण पिंजर की बन्दिनी मैना से कौन कहने जायगा कि उपवन में क्या हो रहा है—पराग चूर रहा है कि आग की लपटें उठ रही हैं। उसी मैना जैसी स्थिति मेरी है। उसमें मुझमें कोई अन्तर नहीं।

गोपाल—अन्तर है महारानी ! मैना का अस्तित्व पिंजरे की शोभा बढ़ाने के लिए ही होता है परन्तु आप प्रजा की स्वामिनी हैं, माता हैं।

तारा - प्रजा की स्वामिनी होने पर भी रानी अपने राजा की प्रजा और स्वामी की दासी ही होती है। प्रजा की माता होने पर भी अपने पति की पत्नी ही होती है। नारी का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कहाँ ? सती की सत्ता पति में निहित होती है। नारी जीवन विराट शून्य है जिसका स्वतन्त्र मूल्य नहीं परन्तु यदि एक पति बगल में रहे तो वही दस के समान है।

गोपाल—क्षमा करो देवि, मैं नहीं जानता था कि तुम अपने शृंगार में इतनी करुण हो। तुम्हारी स्वतंत्रता इतनी परतन्त्र है।

तारा—नारी की परवशता एक निर्वसन सत्य है जिस पर दृष्टिपात करना भी पुरुषों के लिए पाप है।

गोपाल—व्यंग्य न करो रानी, मैं बुढ़ा हूँ।

तारा—(मुस्कुराती हुई) इसीलिए बच्चों के खिलौने हैं।

गोपाल—मैं खिलौना हूँ ? तुम लोग मुझे उछालोगे, पटकोगे और मुझे चोट न लगेगी ।

तारा—अपनी क्रीड़ा में विभोर बालक यह नहीं देखता कि खिलौने को कहाँ चोट लग रही है ।

गोपाल—ठोक कहती हो रानी, बच्चों का खेल-खिलौनों के नष्ट करता है । राजा का खेल प्रजा को कष्ट देता है । तब तो महाराज रघुनाथ सिंह कोई नया काम नहीं कर रहे हैं ।

तारा—मेरे पति महाराज क्या कर रहे हैं यह तो आप बताते ही नहीं ।

गोपाल - यह वृद्ध बड़ी आशा लेकर आपके पास आया था परन्तु अब कुछ कहने का साहस नहीं होता ।

तारा—नहीं-नहीं, आप स्पष्ट कहिये । मेरा हृदय आशंका के अन्धकार में आकुल हो उठा है ।

गोपाल—तो सुनिये और सुनने के पहले साहस बटोर लीजिये । आज के महाराज रघुनाथ सिंह सूर्योदय होने के पूर्व ही नवाब नसीर या मुनीर या आसमानजाह होने जा रहे हैं ।

तारा—क्या ...

गोपाल—यही कि हमारे महाराज वैष्णव शिरोमणि श्री रघुनाथ सिंहजी देव अपने पूर्वजों के धर्म को टूटे हुए जनेऊ की तरह फेंक देने के लिये तैयार हैं ।

तारा—(मर्माहत-सी मन्द स्वर में) तो भी क्या चिन्ता ? पति के सुख में ही सती को सुख है ।

गोपाल—यह आप क्या कह रही हैं ।

तारा—जो मेरा धर्म मुझसे कहला रहा है ।

गोपाल—महारानी, तनिक परिणाम की ओर तो देखो ।

महाराज के धर्म-परिवर्तन कर लेने पर लाल बेगम का प्रताप पूर्णता पर पहुँच जायगा । तब आपकी क्या दशा होगी ।

तारा—इस समय से अधिक शोचनीय सम्भवतः नहीं ।

गोपाल—नहीं महारानी, अपने लिए न सही पर प्रजा के लिए आप महाराज से प्रार्थना कीजिये । उन्हें उनके निश्चय से विरत कीजिये ।

तारा—महाराज के धर्म-परिवर्तन करने से प्रजा की क्या हानि है ।

गोपाल—आप नहीं जानती महारानी ! आप नहीं जानती । परसों महाराज ने डौँडी पिटवाई है कि जो परसों सवेरे तक महाराज के साथ ही धर्म-परिवर्तन न कर लेंगे उन्हें प्राण दंड दिया जायगा ।

रानी—[चुप होकर कुछ सोचती है ।]

गोपाल—आप चुप क्यों हो गयीं ।

तारा—हूँ, कुछ करना होगा । (जोर से) यदि महाराज धर्म-परिवर्तन न करें तब तो प्रजा पर आयी हुई आपत्ति दल जायगी न ।

गोपाल—अवश्य, अवश्य, निश्चय ।

तारा—तब आप जाइये और निश्चिन्त रहिये ।

गोपाल—आप क्या करेंगी ।

तारा—जो कुछ आवश्यक होगा ।

गोपाल—महाराज धर्म-परिवर्तन नहीं करेंगे ।

तारा—(दृढ़ता-पूर्वक) नहीं ।

(मंत्री जाता है । रानी अन्यमनस्क सी कुछ सोचती है फिर धीरे-धीरे मालती-कुंज में घुस जाती है । दूसरी ओर से दो स्त्रियों मुसलमानी परिच्छेद में प्रवेश करती हैं ।)

लाल बेगम—मीना ।

मीना—सरकार !

लाल—आज मैं बहुत खुश हूँ ।

मीना—खुश होने की तो बात ही है हुजूर । आप अपने वक्त की नूरजहाँ है ।

लाल—मैं नूरजहाँ से बढ़कर हूँ ।

मीना—सच फरमाती हैं मलकए आलम । बिल्कुल सच । मैंने नूरजहाँ की तसवीर देखी है । वह भी हसीन थी मगर हुजूर का हुस्न, वल्लाह ।

लाल—मैं हुस्न की बात नहीं कर रही हूँ, मीना

मीना—जी ।

लाल—जो नहीं, यह बता कि नूरजहाँ ने क्या किया था ?

मीना—(दबी जवान से) जहाँगीर पर हुक्मत ।

लाल—हुश । तू तो बात ही नहीं समझती ।

मीना—समझा दीजिये हुजूर ।

लाल—जहाँगीर ने नूरजहाँ के शौहर को कत्ल किया था । जानती है ?

मीना—जरूर जानती हूँ सरकार । कत्ल किया था, जरूर किया था । तुजुक जहाँगीरी में ऐसा ही लिखा है ।

लाल—रघुनाथ सिंह ने मेरे शौहर को कत्ल किया ।

मीना—यह तो आँखों देखी बात है ।

लाल—नूरजहाँ ने जहाँगीर पर कब्जा करके शौहर के कत्ल का बदला लिया ।

मीना—यह तो मैं नहीं जानती हुजूर, खुदा मूठ न बुलवाये यह तो मैंने कहीं नहीं पढ़ा ।

लाल—यह पढ़ने की नहीं, समझने की बात है।

मीना—तो यों कहिये। अब मैं सब समझ गयी।

लाल—क्या समझा ?

मीना—बल्लाह तूने खूब समझा। अच्छा सुन। नूरजहाँ ने जहाँगीर का सिर्फ राज लिया था। मैं रघुनाथ का राज ले चुकी हूँ। कल सुबह तक उसका धरम भी ले लूँगी। बोल, मैं नूरजहाँ से बढ़ गयी न।

मीना—दरीं चे शक। यह तो बिलकुल आईने की तरह साफ है।

लाल—इतना ही नहीं, परसों तक बिसुनपुर की सारी रियाया भी हमारा दीने पाक कबूल कर लेगी। मेरे इस काम से खुदा कितना खुश होगा।

मीना—और फरिश्ते आपके दस्ते मुबारक बोसे लेंगे।
[बाहर से शोरगुल की आवाज आती है।]

लाल—देख तो मीना, यह शोर काहे का है।

मीना—अभी देखती हूँ सरकार, लेकिन जरा आप देखिये वो महाराज आ गये।

(रघुनाथसिंह का प्रवेश)

रघुनाथ—बेगम

लाल—बन्दानबाज।

रघुनाथ—ओह, आज तो तुब बेहद खूबसूरत जँच रही हो। तुम्हारे हुस्न की लपटें...

मीना—ऐसी जान पड़ती हैं जैसे सैकड़ों शमायें एक साथ जला दी गयी हों।

रघु—ठीक कहा मीना, बिलकुल ठीक कहा। खूब कहा।

लाल—लेकिन सरकार, जलती हुई शमा परवानों को भी जला देती है ।

रघु—यह भी सही है बेगम, मैं भी तुम्हारा परवाना ही हूँ । जलने का मजा मुझसे पूछो ।

लाल—मेरे महबूब, अभी बाहर यह शोर कैसा हो रहा था ।

रघु—वह कुछ नहीं, विष्णुपुर की प्रजा शोर मचा रही थी ।

लाल—क्यों ?

रघु—उसे आज तुम्हारा हुक्म सुना दिया गया है । लेकिन विष्णुपुर की नूरजहाँ ! मन में बैठा वैष्णव न जानें कैसा करता है । वह बार-बार मचलता है ।

लाल—उसे काबू में लाइये, मेरी दीनो दुनिया के मालिक ! बरना वह मुझे ही विसुनपुर से चलता कर देगा ।

रघु—ना, ना, ना, ना, यह न कहो । चलो मूले पर । अपने हाथों से एक प्याला पिलाओ । मुझे खरीद लो, मेरा राज खरीद लो । मेरा दीन व ईमान खरीद लो ! कीमत ? फकत लाल बेगम के हाथ का एक लाल लाल लबालब प्याला ।

(रघुनाथ लालबेगम का हाथ पकड़ कर मूले पर बैठाता है । वह उसे मधुपान कराती है । लाल बेगम के इशारे पर मीना सुर-बहार लेकर बजाने बैठती है । नेपथ्य से मधुर स्वर में किसी के गाने की आवाज आती है ।)

गजल

हर वक्त हरा रहता है गुलजारे मुहब्बत ।
वा दिल ही क्या जिसमें न चुभा खारे मुहब्बत ॥
ईरान या तूरान की क्या सस्तनतें हैं ।
दुनियाँ में बड़ी सबसे है सरकारे मुहब्बत ॥

शिकवा है, इशारे हैं, कहीं सद् हैं नाले ।

खाली कभी रहता नहीं दरबारे मुहब्बत ॥

रघु—लाल बेगम ।

लाल—हुजूर आलम ।

रघु—सुनती हो 'दुनियाँ में बड़ी सबसे है सरकारे मुहब्बत ।'

लाल—सरकारे खुदा की रियाया होना उससे बेहतर है ।

रघु—लेकिन हमारे मजहब में तो मुहब्बत को ही परमात्मा बताया गया है ।

लाल—जिस बात को कोई हिन्दू नहीं मानता ।

रघु—यह कैसे कहती हो लाल बाई । एक हिन्दू तो मैं ही तुम्हारे सामने खड़ा हूँ । और प्रेम की बेदी पर धन-दौलत और राजपाट ही नहीं अपना धर्म भी न्योछावर करने के लिए तैयार हूँ ।

लाल - अगर सरकार को मेरी बात मानने में इतनी तकलीफ हो रही है तो हुजूर मुझे ही बिदा कर दें ।

रघु—तुम्हें बिदा कर दूँगा तो मैं कैसे जीऊँगा लाल बाई ।

लाल—अपने मजहब की तारीफ करके ।

रघु—नाराज हो गयीं न । नाराज मत हो । तुम जो कहोगी वही करूँगा । तुम्हारा तो फिर भी खुदा का मजहब है लेकिन तुम कहोगी तो शैतान का मजहब भी मान लूँगा ।

लाल—मर्दों का क्या ऐतबार । फिर बदल जाओगे ।

रघु—कभी नहीं, यह हमारी प्रतिज्ञा है ।

लाल—मुझे यकीन नहीं आता ।

रघु—ऐसी बात, तो चलो अभी कलमा पढ़ लूँ । मेरी राह कोई रोक नहीं सकता ।

तारा (झुंज से निकल कर)—मैं रोऊँगी, महाराज !

इस पिशाची के बहकावे में आकर आपको धर्म परिवर्तन न करने दूँगी ।

रघु—कौन रानी ताराबली ।

तारा—हाँ प्रभु, आप की दासी ।

रघु दासी का धर्म है स्वामी की आज्ञा का पालन करना ।

तारा—और विपत्ति से उसकी रक्षा करना ।

रघु—रानी, तुम हट जाओ । मेरी इच्छा के पथ का रोड़ा न बनो । ठोकरें खाओगी पिस जाओगी ।

तारा—पिस कर सुरमा बनूँगी और आप की आँखों में लगकर उसमें पड़ा हुआ धुन्ध काट दूँगी । मैं अन्त तक सती धर्म का पालन करूँगी । प्रभो ! देखिये, सुनिये, सिंह द्वार पर खड़ी प्रजा बिलख रही है । उसकी करुण प्रार्थना पर ध्यान दीजिये । मेरी विनती मानिये ।

रघु—तुम चाहती क्या हो ?

लाल—(रघुनाथ का हाथ थाम कर) जाने आलम ! अब देर हो रही है ।

रघु—तो जल्दी करो ।

तारा—आप न जाने पायेंगे महाराज, मैं आपके पैरों में बैड़ी बनकर पड़ जाऊँगी ।

रघु—रानी हट जाओ, कहना मानो । मैंने धर्म परिवर्तन करने की प्रतिज्ञा की है ।

तारा—और मैंने भी प्रतिज्ञा की है कि आपको धर्म परिवर्तन न करने दूँगी ।

रघु—कैसे न करने दोगी । रोको, मैं जाता हूँ ।

तारा बस पैर आगे न बढ़े ।

रघु—ओह यह बात ! तो तुम्हें बन्दिनी बनाता हूँ । (तलवार खींच कर उसकी ओर भपटता है ।)

तारा—सावधान, मैं आपकी शुद्ध-बुद्ध आत्मा को इस पाप क्लुषित शरीर से मुक्त करती हूँ । (चोली में से छुरा निकाल कर रघुनाथ की छाती में भोंक देती है । लाल बेगम चीख कर पीछे हट जाती है । मीना खून-खून चिल्लाती हुई, इधर-उधर दौड़ती है । बूढ़े मन्त्री के साथ प्रजा का प्रवेश ।]

मन्त्री—अरे यह क्या ।

तारा—प्रतिज्ञा की पूर्ति ! जनम-जनम के प्रेम का प्रदर्शन । अब सती भी पति के पास जाती है ।

मन्त्री-क्यों, क्यों ?

रानी—तात ! शशिना सह याति कौमुदी (आत्महत्या करती है । यह दृश्य देखकर प्रजा आपे से बाहर हो जाती है ।)

प्रजागण—यह वेश्या कहाँ है, लालबाई ! वह है—वह । उसको पकड़ो । लोहे की सिकड़ी में हाथ-पैर बाँधकर तालाब में फेंक दो । हमारे राजा-रानी इसी के कारण मरे हैं । बोलो-बोलो, पति-घातिनी सती की जय ।

[सब दौड़कर लाल बेगम को पकड़ लेते हैं और ले जाते हैं । नेपथ्य में शान्त करुण बाद्य ध्वनि ।]

धीरे-धीरे पटाक्षेप ।

संसार-नाटक-रसोत्तम-रत्न-पात्रीम्

डाक्टर पूर्णचन्द्र उर्फ रिक्शा चालक पुनवासी राम को बिन घरनी घर भूत का डेरा स्वरूप काल कोठरी की मिट्टी के तेल से भरे हुए धुएँ की रोती रोशनी में जीर्ण शोण और दुर्गन्ध भरी कथरी पर बैठे हुए सुमन्त ने वैसी ही एक दूसरी कथरी पर पड़े पूर्णचन्द्र के जलते हुए ललाट पर हाथ रखा और फिर हाथ तत्काल हटा लिया ।

बिना आंख खोले ही पूर्ण चन्द्र पिनपिनाया—

‘बहरे हो क्या ? इतनी देर से घन्टी बजा रहा हूँ, सुनायी नहीं पड़ता !

‘आप यह सब क्या कह रहे हैं ? यह तो मैं हूँ सुमन्त !’— सुमन्त ने बड़ी ही कोमलता के साथ कहा । पूर्णचन्द्र ने आँखें खोल दीं । बोला—तुम हो मन्तू ! मैं सपना देख रहा था कि मैं रिक्शे पर सवारी लिये चला जा रहा हूँ । एक आदमी बीच रास्ते में खड़ा है—न इधर हटता है, न उधर । मैं घण्टी बजा रहा हूँ मगर वह सुनता ही नहीं । अच्छा बताओ, मेरा नाटक पढ़ गये ?

‘पढ़ गया, सुमन्त ने कहा—पढ़कर अफसोस हुआ कि इस नाटक का अभिनय मैंने नहीं देखा ।

‘अच्छा हुआ तुमने वह अभिनय नहीं देखा क्योंकि जिन लोगों ने वह नाटक देखा वे पागल हो उठे और अपने पागलपन में मुझे उन्होंने क्षतविक्षत कर छोड़ दिया—पूर्णचन्द्र ने कहा ।

दुनिया की ह्या-हीन आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के शिकार ये दोनों उच्च शिक्षित सहृदय प्राणी समाज के निम्नतम स्तर पर उतर कर उसका कीचड़ लपेट अपना वास्तविक परिचय छिपाये हुए उन दो व्यक्तियों की तरह परस्पर इतने समीप आ गये थे जो समुद्र में जहाज डूबने पर संयोगवश एक ही बहते हुए पटरे पर एक साथ हाथ रखते हैं । इन दोनों को जिस पटरे पर एक साथ हाथ रखने का संयोग उपस्थित हुआ था उसका नाम है—प्रेम को भूख ।

उन दोनों में से एक ने मोटा वेतन ऊँचा पद और विद्वत्ता की ख्याति अर्जित करने में सफलता पायी । वह जीवन की सर्वोच्च मंजिल की ओर बढ़ता ही जा रहा था कि पाँव फिसला और चूँकि वह बहुत ऊँचे था, इसलिए बहुत नीचे गिरा और चूँकि बहुत ऊपर से बहुत नीचे गिरा इसलिए बिलकुल चकनाचूर हो गया ।

दूसरे को पहली ही सीढ़ी पर इतनी करारी भीड़ का सामना करना पड़ा कि वहीं पर धक्का मुक्का करने में उसका कचूमर निकल गया। वह भी गिरा। एक हो सीढ़ी से गिरने के कारण दरकच-सी लग कर रह गयी।

प्रोफेसर पूर्णचन्द्र को रिक्शा चलाने में मर्मान्तक पीड़ा हुई, सुमन्त को नहीं। रिक्शा चलाने में उस केवल थकावट-सी आकर रह गयी, कारण वह कालेज की कच्चा चलाते-चलाते नहीं, अखबार के दफ्तर में कलम चलाते-चलाते रिक्शा चलाने लगा था।

पूर्ण चन्द ने कहा—मन्तू, देखो ठिलिया में पानी हो तो जरा पिलाओ तो सही ! गला जला जा रहा है।

सुमन्त ने उठकर पूर्ण चन्द को पानी पिलाया। पानी पीकर पूर्ण चन्द ने पूछा—तुम्हारी मालकिन मुझे पहचान तो नहीं पायी न !

“कह नहीं सकता। बड़ी बुद्धिमती महिला है। जैसा नुकीला नयन नक्शा है वैसी ही पैनी बुद्धि भी है। आप पीछे-पीछे रिक्शा लिए आ रहे थे। मैं शीशे में देख रहा था कि वह आपके ही रिक्शे की ओर बार-बार घूम कर देख रही है। लेकिन डाक्टर साहब, आप दर्शन शास्त्र के पंडित होकर भी रूप के सुदर्शन जाल में कैसे फँसे ?—सुमन्त ने पूछा।

पूर्णचन्द ने उत्तर न देकर प्रश्न किया—‘मन्तू, किसी को कूड़े की ढेरी में से अन्न का कण बीन-बीन कर खाते देख क्या कभी तुमने पूछा है कि तुम मनुष्य होकर यह क्या कर रहे हो ?’

सुमन्त ने कहा—‘पूछने की आवश्यकता क्या ? यह तो मालूम ही है कि भूख सब कुछ करा डालती है ।’

उसकी बात लोकते हुए पूर्ण चन्द्र ने कहा—‘उसी-उसी भूख ने मेरी भी यह दशा कर दी ।’

‘परन्तु आप को तो पत्नी थी । आपने बताया है कि वह आप से प्रेम भी करती थी’—सुमन्त ने सुझाया ।

—‘उस समय नहीं थी और यदि रहती भी तो क्या ? सुमन्त, यह बात बिलकुल गलत है कि कुछ भी खा लेने से भूख मिट जाती है । सच तो यह है कि जब तक रुचिका भोजन न मिले तब तक चाहे जितना खाते जाओ, भूख बनी रहेगी—तनकी न सही, मन की ही सही ।’

सुमन्त अब तक बाहर देख रहा था । पूर्णचन्द्र की बात सुनकर वह क्षण भर के लिए आत्मदर्शनार्थ विवश हो गया । वह भी अपनी पत्नी चन्द्रा की उपेक्षा कर कभी सुमित्रा, तो कभी चित्रा, तो कभी तारा की ओर निहार कर अपनी रुचि को वृत्त करने का साधन खोजता रहा है । उसने बिल-बिला कर पूछा—‘क्या समस्या के समाधान का कोई उपाय नहीं ?’

—‘है क्यों नहीं ? जो वस्तु तुम्हें अरुचिकर लगती है उसका विश्लेषण कर डालो । फिर देखो कि उसका कोई अंश तुम्हें रुचिकर लगता है या नहीं । कोई न कोई अंश अवश्य रुचिकर लगेगा । बस उसे ही कसकर पकड़ लो । उसे कभी हाथ से न जाने दो । धीरे-धीरे वह वस्तु भी जिसका कि एक अंग तुम्हारी रुचि के अनुकूल प्रमाणित हुआ है, अपनी समूची समग्रता में तुम्हें रुचिकर प्रतीत होने लगेगी—लेकिन अफसोस यह भान मुझे कल हुआ । पूर्ण चन्द्र ने कहा ।

सुमन्त ने ठंडी सांस भरकर कहा—वेदान्ती लोग जो प्रेम को माया कहते हैं वह ठीक ही है ।

“प्रेम माया नहीं होता, नारी महामाया है,” पूर्ण चन्द्र ने झिड़कते हुए कहा—‘उसके और ब्रह्म के परस्पर आकर्षण को प्रेम कहते हैं। इससे निवृत्ति अस्वाभाविक है, प्रवृत्ति परम स्वाभाविक।

वही तो मैं कह रहा हूँ कि नारी से जीते जी छुटकारा नहीं है—सुमन्त बोला

‘क्या जीते जी कभी जीवन से छुटकारा मिलता है ? जब मिलता है तो जिन्दगी जिन्दगी नहीं रह जाती, मौत कहलाती है। वैसे ही स्त्री के बिना पुरुष का जीवन, जीवन नहीं है, जीवनाभास है।’ पूर्णचन्द्र ने निर्णयात्मक स्वर में घोषणा की।

‘मानता हूँ, दादा !’—सुमन्त ने शिष्यवत् निवेदन किया।

‘अच्छा, तो थोड़ा पानी और पिलाओ !’

‘दादा, मेरा रिकशा बाहर खड़ा है। चलो तो वर्मा बाबू के दवाखाने तक हो आये, आप को बुखार तेज है।’

‘बुखार नहीं मन्तू ! यह जिगर की आग है जो भीतर न समा पाकर बाहर छिटक पड़ी है ‘भखो सो भखो, उभखो सो ढखो परै’ यही किस्सा है। मैं दवा किस के लिए पीऊँ ? बुधिया मुझे बहुत प्यार करती थी मन्तू, मुझे छोड़ कर भाग जाने में उसे कितना कष्ट हुआ होगा। वह कहाँ होगी। क्या करती होगी ?—पूर्णचन्द्र ने भरे कण्ठ से कहा। जीवन-युद्ध के उस कठोर योद्धा की आंखों से आंसू की दो बूंदें निकल कर उसके शीर्ण और जलते हुए कपोलों पर लुढ़कती हुई उसकी मैली तकिया पर गिर पड़ीं।

सुमन्त ने सोचा कि लुधा से प्रपीड़िता पत्नी के पलायन की याद आ जाने से पूर्ण चन्द्र की विकलता बढ़ गयी है। उसने बात बदलने की दृष्टि से कहा—‘तो आप यदि दवा न खाँयें तो कम से कम बातचीत न कर विश्राम ही कीजिये।’

‘पूर्ण विश्राम करूंगा रे पागल’ पूर्ण चन्द्र ने कहा—‘लेकिन आज मुझे भर पेट प्रवचन कर लेने दे। आज मैं अपने एक अकेले शिष्य के सामने अपनी एक शिष्या के सम्बन्ध में अपनी दुर्बलता का इजहार करूंगा ही। इस मामले में तू मुझे पूरा-कैथोलिक ईसाई समझ। बिना ‘कनफेशन’ किये कहीं मर गया तो मुक्ति नहीं होगी।

अपने मजाक पर स्वयं ही हँसते हुए पूर्णचन्द्र आगे बोला—‘सुन आज तुझसे ऐसी-ऐसी बातें कहूंगा जो आज तक न किसी से कहा है और न किसी से कहूंगा ही। तुझसे इसलिए कह रहा हूँ कि अगर कभी अबसर आये तो तारा से—अपनी मालकिन से इतना अवश्य कह देना कि डाक्टर पूर्णचन्द्र कह गये हैं कि तारा, प्रेम मन का विकार नहीं है। साकार जीवन है। यदि तूने कौलेज की प्रबन्ध समिति के व्यवस्थापक—अपने पिता रायबहादुर के० सी० कपूर के बहकावे में न आ गयी होती तो प्रोफेसर पूर्णचन्द्र पुनवासी राम बनकर गुमनाम न मर जाते। तब उन के निधन पर भी दुनियाँ की सभी राजधानियों में शोक प्रस्ताव पारित किए जाते।

पूर्णचन्द्र की आँखें बन्द हो गयीं। आवाज जरा तेज हो गयी—कह देना मन्तू, उससे कह देना कि जो वस्तु मैंने उससे चाही थी वह मुझे बुधिया से मिली—बुधिया से जो उस जाति की थी जिसे जात्याभिमानी समाज में अन्त्यज कहा जाता है। परन्तु रुचि परिवर्तन का नुस्खा तब तक मुझे न मिल सका था। मैं.....

नुस्खा शब्द सुनते ही सुमन्त का कर्त्तव्य बोध जाग उठा। वह बिना कुछ कहे ही चुप चाप डाक्टर वर्मा को लाने के लिए

उठ खड़ा हुआ। कोठरी से बाहर निकलते-निकलते उसने सुना कि पूर्णचन्द्र बड़-बड़ा रहे हैं—

तारा, मुझे तुम्हारे प्रेम ने मारा। मैंने बुधिया को मार डाला। हाँ मन्तू, तारा से कह देना। कह देना कि तारा उस नाटक वाली रात को याद करो। उस क्षण को याद करो जब तुमने अपने उस सिद्धान्त को भूलकर कि प्रेम मन का विकार है, उसे जीवन का आधार स्वीकार किया था। स्वयं-स्वयं आगे आगे बढ़कर मुझे

उधर सुमन्त पैडिल पर पैर मारता हुआ रिक्षो को उड़न-खटोला बनाये डाक्टर वर्मा के दवाखाने की ओर उड़ा जा रहा था। इधर सन्निगत की झोंक में पूर्णचन्द्र बातों के तोते उड़ा रहा था—

—सुन ले मन्तू, सुन ले, उसी नाटक की बात सुनाता हूँ। कालेज के व्यवस्थापक के कहने पर बाढ़ पीड़ितों के सहायतार्थ अभिनय करने के लिए मैंने नाटक लिखा। उसमें पति की हत्या कर पत्नी का उसके प्रति प्रगाढ़ प्रेम प्रकट करा मैंने प्रेम की दुनियाँ के एक नये रास्ते का उद्घाटन किया। मैंने नायक का पार्ट लिया और तारा ने नायिका का।

सुमन्त वर्मा बाबू की दुकान पर पहुँच गया। परन्तु वे कहीं रोगी देखने गये थे। सुमन्त उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

काली कोठरी में पूर्णचन्द्र की बाणी का पूर्ण प्रकाश फैल रहा था—दूसरी घण्टी बज गयी। नाटक के निर्देशक प्रिंसिपल साहब 'ग्रोन रूम' में पर्यवेक्षण करने आये कि सब तैयार है न! मैं तारा के साथ एक कोने में बैठा धीमे स्वर में अपना पार्ट याद कर रहा था। मेरे कानों में आवाज आयी। वे पूछ रहे थे—सब ठीक है न! किसी ने जबाब दिया कि सब ठीक है

परन्तु प्रोफेसर पूर्णचन्द्र किसी बादल में ही अब तक छिपे हैं। कोई बोला—तब उन्हें खोजो। प्रिंसिपल साहब ने मुँह बनाकर कहा—देखो तारा कहाँ है। पूर्णचन्द्र जी उसी के आस-पास दिखायी देंगे।

डाक्टर वर्मा अब भी नहीं लौटे। सुमन्त प्रतीक्षा करते-करते घबड़ा उठा। उसने कम्पाउण्डर से पूछा—कितनी दूर गये हैं ?

गये तो हैं पास ही। आते ही होंगे।—कम्पाउण्डर ने कहा। सुमन्त पुनः प्रतीक्षा करने लगा।

उधर पूर्णचन्द्र ने सुमन्त की पीठ के एवज जमीन थपथपाते हुए कहा—नाटक बड़ा सफल रहा रे, मन्तू ! जब वह समाप्त हो गया तो हम दोनों रंगमंच के पीछे उपवन में टहलने लगे।

पूर्णचन्द्र की वाणी धीमी पड़ने लगी और फिर बन्द हो गयी। वह बेहोशी में गोता खा गया। कहते हैं आदमी जब डूबने लगता है और तल में पहुँच जाता है तब उसकी आँखों के सामने उसके जीवन भर की घटनाएँ नाच उठती हैं। संज्ञा शून्यता की सरिता के तल में पहुँच कर पूर्णचन्द्र भी देखने लगा—

शरदमल्लिका के सौरभ से सनी हुई वायु शरीर में सिहरन जगा रही थी। आकाश में आश्विन पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी सोलहों कलाओं से उदित था। मृणाल-की कलाइयों पर सिर रखकर कमल की नन्हीं नन्हीं कलियों को थपकी दे देकर उन्हें सौँभ सबेरे ही सुलाकर और इस प्रकार बच्चों के उत्पात और व्याघात की ओर से निश्चिन्त होकर अपने प्रियतम पवन के साथ सरोवर की लोल लहरें कलोल करने लगे थीं। सरोवर के तट पर टहलते-टहलते सहसा पूर्णचन्द्र ने तारा से पूछा—क्यों तारा, तुम्हें पूर्णचन्द्र कैसा लग रहा है ?

वातावरण की भादकता से अभिभूत तारा ने उत्तर भी

देया और प्रश्न भी किया—‘किस पूर्णचन्द्र के सम्बन्ध में पूछ रहे हैं। मैं तो तीन पूर्णचन्द्रों को देख रही हूँ—एक ऊपर आकाश में।’

तारा ने आकाश को ओर दाहिने हाथ की एक अँगुली उठा कर दिखाया। फिर बायें हाथ की उँगली से तालाब में चन्द्र-वेम्ब का प्रतिविम्ब दिखाती हुई बोली—दूसरा पूर्ण चन्द्र जल में है और तीसरा पूर्ण चन्द्र ? इसी जमीन पर —

अपना वाक्य बिना पूरा किये तारा पूर्णचंद्र की ओर देखने लगी। पूर्णचंद्र ने एक बार आकाश के पूर्णचंद्र को देखा, फिर सरोवर में तैरते हुए पूर्णचंद्र को देखा और फिर पानी में अपनी परछाई देखी। उन्होंने अपनी आँखों में एक तथा संकेत देखा और जैसे भौंरा कली के कान के पास गुन-गुन करता रहता है वैसे ही वे तारा के कान के पास भुन-भुन करने लगे।

बगीचे से सटे हुए राधा-कृष्ण के मंदिर में कोई कथा वाचक भागवत दशम स्कन्ध की कथा आरम्भ कर रहे थे—

भगवानपि ता रात्रोः शरदोत्फुल्ल मल्लिकाः

वीक्ष्य रंतुं मनश्चक्रे योगयामुपाश्रितः ।

तदोडुगाजः ककुभः करैर्मुखं

प्राच्याविलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः

स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्

प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥

पूर्ण चन्द्र ने तारा का हाथ अपने हाथों में लेते हुए उसके मुख की ओर मुख बढ़ाया। तारा ने उनका अनुकरण किया। दोनों के अधर मिले। बिजली से बिजली टकरायी और बज्र-

पात ! कालेज के व्यवस्थापक और तारा के पिता कपूर साहब प्रिंसिपल के साथ सामने खड़े थे ।

‘कहिये साहब ! आज तो आपके नये-नये ढंग हैं । एक तो सम्प्रदायिक नाटक लिखकर आपने हिन्दू-मुसलमान का सबाल खड़ा किया और उस पर आपकी यह जुर्रत । आप भले आदमियों की संस्था में रहने लायक नहीं हैं । तारा...इधर चल ।’

कपूर साहब यह फटकार बताकर लौट पड़े । तारा उनके पीछे-पीछे चली । चुम्बन में सिकुड़ा हुआ पूर्ण चन्द्र का आँठ सिकुड़ा हो रह गया । वे वहीं काठ होकर खड़े रह गये ।

डाक्टर वर्मा की प्रतीक्षा करते-करते निराश होकर सुमन्त वापस लौटा तो देखा कि पूर्णचन्द्र के आँठ सिकुड़े हुए हैं । परेशानी चेहरे पर छायी हुई है । वह चुपचाप अपने पूर्व स्थान पर बैठ गया ! पूर्णचन्द्र पुनः बड़बड़ाने लगे—

‘जानते हो मन्तू ! मैंने तारा के चले जाने पर बाग में खड़े-खड़े क्या कहा था ? यह कहा था कि तारा ! इस संसार के सर्वोत्तम रस, शृङ्गार का आकण्ठ पान करने योग्य रत्न की पात्री तुम्हीं हो ! तुम्हीं हो !! तुम्हीं हो!!! तुम्हें मैं सदैव स्मरण रखूँगा । मरते समय भी कहूँगा—

अद्यापि तां चितितले वरकामिनीनाम् ।

सर्वाङ्ग सुन्दरतया प्रथमैकरेखाम् ॥

संसार-नाटक-रसोत्तम-रत्न-पात्रीम् ।

कान्तां स्मरामि कुसुमायुधबाणखिन्नाम् ॥

पूर्णचन्द्र बायु के झोंके में उठ खड़ा हुआ । सुमन्त उसे सम्हालने बढ़ा । पूर्णचन्द्र अपनी सारी शक्ति लगाकर चिल्लाया—

संसार-नाटक-रसोत्तम-रत्न-पात्रीम् ।

कान्तां स्मरामि.....

वह गिरा । उसके फड़कते ओठों से दो तीन बार निकला—
कान्तां स्मरामि, कान्तां स्मरामि, कान्तां स्मरामि.....।

और उसी समय कोने में टिमटिमाता हुआ दीपक एकबार
जोर से लहक कर बुझ गया ।

एकौ रसः करुणा एक

ऊपर अनन्त आकाश के एक
निभृत कोने में एक तारा अपनी
झिलमिलाती आखों से कोई सपना
देख रहा है ।

नीचे पृथ्वी पर अपने कमरे में
सोती हुई दूसरी तारा सपना
देख रही है ।

आकाश का तारा स्पष्ट देख रहा
है कि पूर्ण चन्द्र अस्त हो गया ।
अब आज की रात उसका प्रकाश
देखने को न मिलेगा ।

बेचारा दुःख से द्रवित हो उठा और
पानी की बड़ी सी बूंद की तरह
चुपचाप चू पड़ा ।

अपने कमरे में पलंग पर सोयी हुई तारा ने न जाने क्या स्पष्ट सपना देखा कि उसका भी मन द्रवीभूत हो गया और आंसू की एक बूँद निकल कर तकिये पर चू पड़ी। एक लम्बी साँस खींचकर तारा ने करवट बदली।

उसके पिता उसकी माता के कमरे के दरवाजे पर खड़े चिन्ता रहे थे—‘तारा की अम्मा, आज सोती रहने से काम न चलेगा ! तुमसे कल ही कह दिया कि तारा के डाक्टर की डिग्री पाने के उपलक्ष में मैं शानदार दावत दूँगा। सो बगीचे में टहलते समय वकील साहब मिल गये। उन्होंने कहा कि शुभस्य शीघ्रम्। वाइस चान्सलर साहब भी नगर में मौजूद हैं। आज ही दावत करो। एकही दावत दो उपलक्षों में हो जायगी। एक ढेलेसे दो शिकार। मैंने भी कह दिया—एवमस्तु। लौटते वक्त होटल में आर्डर दे आया। वकील साहब कार्ड छपवाने गये। वही बँटवा भी देंगे। बाहर का काम तो मैंने कर दिया।’ भाई अब घर के भीतर का काम तुम संभालो। तुम जानो और तुम्हारा काम जाने।

तारा की अम्मा सोयी नहीं थी। वह आधी रात से जाग रही थी। पति के यहाँ से कन्या के भविष्य की बात बिलकुल उपेक्षणीय करार दे दी जाने पर जब वह अपने कमरे में आयी और पलंग पर लेटी तो उन्हें भी नींद न आयी। अपने पति के घोर स्वार्थी स्वभाव का उन्हें पूरा पूरा परिचय था। उन्हीं के हठ के कारण उनकी पुत्री का प्रथम पवित्र प्रेम व्यर्थ गया और बदनामी हाथ लगी सो मुक्त में। और आज रात उन्होंने जो कुछ देखा वह तो कल्पनातीत ही है। कौन सोच सकता है कि एक ऊँचे दरजे की सुशिक्षिता नारी जिसे आज ही शिक्षा जगत की सर्वोच्च उपाधि पाने की सूचना मिली है वह उसी रात एक रिकशा चालक के कमरे में जायगी। यह तो लज्जा से मर जाने की बात है और

कोई कहता तो वह कदापि विश्वास न करती परन्तु अपनी आखा को क्या करे जिनसे उन्होंने स्पष्ट देखा है कि उनकी पुत्री मन्तू के कमरेसे निकलकर जल्दी-जल्दी ऊपर आयी और अपने कमरे में घुस गयी ! रात सीढ़ी पर किसी के चलने की आहट पाकर उन्होंने अपने कमरेका द्वार खोला था और ताराको मन्तूके कमरे की दालान से ऊपर आते देखा था । तभी से लज्जा, क्षोभ, क्रोध, घृणा की चौआई में उनकी नींद ऐसी उड़ी कि रात भर से उसका कहीं पता ही नहीं है । पति की बात सुनकर उन्होंने कहा—‘आप अपने कमरे में चलिये, मैं अभी आती हूँ । आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है ।’

‘क्या हुआ क्या हुआ’ कह कर राय साहब ने अपनी पत्नी की अस्वस्थता पर गहरी चिन्ता प्रकट की और वहाँ से हट कर वह अपनी पुत्री के कमरे की ओर चले । देखा तो वह अभी बन्द है । कूंडी खटखटाते हुए बोले—‘तारा...तारा ! बेटी मैंने आज तुम्हारे डाक्टरेट पाने का उत्सव मनाने का इन्तजाम किया है और तुम अभी तक सो रही हो ।’

पिता की पुकार पर तारा ने आंखें खोल दीं । रातभर जागते रहने के बाद सबेरे करीब चार बजे उसकी आंख लग गयी थी । इसलिए उसे जागने में विलम्ब हो गया । वह तड़फड़ उठ बैठी । बोली—‘बाबू जी अभी आती हूँ, आज तबीयत ठीक नहीं है ।’

‘क्या बात है भाई कि आज घर भर की तबीयत नासाज है । यह जानता तो वकील साहब की सलाह न मानता-कहते हुए वे अपने कमरे में गये । उसी समय उनकी पत्नी ने भी उनके कमरे में प्रवेश किया । रुदन और जागरण के कारण उनकी आंखें लाल हो रही थीं । राय साहब ने देखा, बोले—भाई कहीं सर्दी-बर्दी तो

नहीं खा गयीं, आजकल दिन जरा खराब है, संभल कर रहना चाहिये ।’

इतने में तारा भी आयी, उसे उसकी माता ने विप दृष्टि से देखा । उससे वह जल कर राख हो जाती अगर उसके पिता भी उसी समय उस पर अपने हृदय के सारे स्नेहामृत की वर्षा न कर देते । उन्होंने कहा—‘आ बेटी, तारा । आ । तूने तो मेरी नाक ऊँची कर दी बेटी ।’ और उसी समय तारा की मां बोल उठी—‘हां ठीक कहते हो उसने मेरी नाक काट कर उसे तुम्हारी नाक से जोड़ दिया है !’ राय साहब हिनहिना कर हंस पड़े—‘अच्छा मजाक है, बहुत अच्छा ।’ परन्तु तारा को काटो तो लहू नहीं । कहीं अम्मा ने रात उसे नीचे जाते या ऊपर आते देख तो नहीं लिया ! तब तो अनर्थ हुआ ! वह यह तो समझेगी नहीं कि मैं अपने मन के आवेग से मन्तू की कोठरी तक गई थी अवश्य, परन्तु मैंने भीतर पैर नहीं रखा !

तारा की आंखें भी रुदन और जागरण से लाल हो रही थीं । चेहरा निस्तेज हो रहा था । राय साहब ने कहा—‘जरा तारा का मुंह तो देखो तारा की अम्मा, कैसा उतर गया है ! बेचारी को पढ़ने में बहुत मेहनत करना पड़ी है ।’

तारा की अम्मा ने कहा—‘तारा का मुंह तुम्हीं देखो । मैं बहुत देख चुकी । अब जितना ही कम देखूँ उतना ही अच्छा ।’

राय साहब ने समझा कि उनका संकेत तारा का विवाह करने की ओर है जिसके बाद वह यहां बहुत कम रह पायेगी । उन्होंने रात को भी तो उस की शादी का उल्लाहना दिया था । मां को बेटी की शादी की फिक्र स्वाभाविक है । परन्तु तारा अपनी मां का असल आशय समझ गयी । बड़ी दुखी हुई । वहां से उठ आयी और अपने कमरे में आकर पुनः अपनी शय्या पर

लुढ़क गयी । उसने अपनी सारी व्यथा—अपने जीवन की समूची व्यथा और पूर्ण विफलता का जिम्मेदार अपने पिता को ठहराया । यदि उन्होंने प्रोफेसर पूर्णचन्द्र से मेरा विवाह हो जाने दिया होता तो आज यह स्थिति न आती । उसने दांत पीसे । आज वह डी० लिट० है, उसी पूर्णचन्द्र की थीसिस के बल पर । वह रिसर्च करती थी और हर हफ्ते उसके पास पूर्णचन्द्र की सुन्दर लिखावट में लिखे हुए उसके निबन्ध के अध्याय नियमित रूप से उसके पास आते रहते थे । वह जानती थी कि कौन भेजता है इसलिए चुपचाप उसकी नकल उतरवा कर टाइप करा लेती थी । धीरे-धीरे उसकी थीसिस तैयार हो गयी । उस पर डाक्टरेट मिलने की सूचना भी आ गयी । परन्तु उसके मन ने अब विद्रोह कर दिया ! प्रोफेसर पूर्णचन्द्र की थीसिस पर वह डाक्टरेट न लेगी । उसका जीवन उसने और उसके पिता ने मिल कर नष्ट कर दिया ! वह घोषणा कर देगी कि थीसिस जाली है । उसकी लिखी हुई नहीं । यों वह पिता से पूरा-पूरा बदला ले लेगी ।

मन में उक्त विचार आते ही खुशी से उसकी आँखें चमक उठीं ! उसने क्लम उठाया और यही स्वीकारोक्ति लिख डाली ! उसने दासी को बुलाया कि मन्तू को वह स्वीकारोक्ति समाचार पत्र में ले जाने के लिए बुला लावे । दासी ने आकर कहा—मन्तू नहीं है ! जान पड़ता है वह रिक्शा लेकर निकल गया ! अब तो साँझ को ही आवेगा बीबीजी, आपको कालिज ले जाने के बख्त ।

—आज रविवार है दाई, कालेज नहीं जाना है ।

रविवार—नगर में दूकान बन्दी का दिन ! मन्तू की परेशानी का आरपार नहीं रह गया ! इस नगर में एकमात्र उसका बन्धु, देश-विख्यात विद्वान डाक्टर पूर्णचन्द्र रिक्शाचालक

पुनवासी राम के छद्मवेश में एड़ियां रगड़ रगड़ कर दुनिया से गुमनाम सिधारा गया और स्वयं उच्च शिक्षित सुमन्त समय के फेर से रिक्शाचालक बना हुआ उसके लिए कफनतक का प्रबन्ध नहीं कर पा रहा है। पुनवासी के शव को घाटतक ले जाने के लिए कम से कम चार आदमियों की व्यवस्था भी करनी है। वह क्या करे कुछ समय में नहीं आता।

पुनवासी की कोठरी कच्ची कोठरियों की कतार में एक थी। अगल बगल भी उसी जैसे लोंग रहते थे। सभी सबेरे सस्त्रीक काम पर निकल जाने और रात वापस आनेवाले। उनलोगों के लौटने में अब भी बिलम्ब था। साँझ सिर पर थी। सुमन्त को पुनवासी के दो पड़ोसी ऐसे मिले जो शव-बहन करने में सहायता देने के लिए तैयार थे। एक सांझ पहले ही कारखाने में हड़ताल हो जाने के कारण वे अपनी कोठरियों में ही मौजूद थे। एक आदमी की कसर थी और कफन के लिए कपड़ा खरीदना था। वह दौड़ा हुआ रिक्शे के अड्डे पर पहुँचा। वहाँ पुनवासी के मरने और उसको स्त्री के भाग जाने की खबर सुनायी। कुल चार पाँच रिक्शाचालक वहाँ मौजूद थे, वे शवयात्रा में शामिल होने के लिए उसके साथ चले।

पुनवासी का शव निकालकर चबूतरे पर सुला दिया गया। रिक्शाचालक-मंडली उसे घेर कर बैठ रही। सुमन्त कफन की तलाश में गया था। जिस समय उसकी मौजूदगी में आज पुनवासी की कुटिया का दीप बुझा और पुनवासी ने उसके सामने ही अन्धकार में दम तोड़ दिया तो एक बार तो सुमन्त का तरुण मन अन्धकार में दहल उठा परन्तु दूसरे ही क्षण जेब से देयासलाई निकाल वह दीपक जलाने लगा। परन्तु दीपक न जाने कब से जल रहा था। अब उसमें तेल ही नहीं रह गया था।

उसे जलाने की कोशिश बेकार थी। सुमन्त ने बेकार कोशिश नहीं की।

बाजार बन्द रहने के कारण जब सुमन्त को कहीं भी कफन के लिए कपड़ा न मिल सका तो वह रायसाहब के घर-अपने डेरे-पर आया। वहाँ आज कुछ और ही चहल-पहल थी। उसने सोचा था कि वह चुपके से तारा से सारी बात कह देगा और उसी से कफन के लिए कपड़ा मांगेगा। मगर उस भीड़-भाड़ में तारा का कोई पता न लगा। तारा की दासी ने जो उसे देखा तो कहा—मन्तू, तुम आज सबेरे जो गये सो अभी आ रहे हो। तारा बीबी तुम्हें दिन भर पूछती रहीं! मन्तू ने एक चिट पर पेन्सिल से पूर्णचन्द्र की मृत्यु का समाचार लिख कर तारा के पास भेज दिया। उसे विश्वास था कि तारा चिट पढ़ते ही दौड़ी आयेगी मगर जब आध घंटे से भी अधिक हो गया और दिया जलने की बेला आ गयी तब मन्तू वहाँ न ठहर सका। सामने तारा की सिल्क की साड़ी पड़ी हुई थी। उसने इधर-उधर देखकर उसे उठा लिया। पुनवासी दादा के लिए इससे अच्छा कफन और क्या होगा।

जिस समय रिक्शाचालकों का दल पुनवासी की लाश साड़ी में लपेट 'राम नाम सत्य है' कहता हुआ श्मशान पहुँचा उस समय रात के आठ बज गये थे। पुनवासी के शव को स्नान करा जल के किनारे ही छोड़ सब चिता की रचना करने लगे। शीत से भरी वायु वेग से चल रही थी। नदी की धारा में लहरों के थपेड़े खाता हुआ एक मुरदा पल-पल घाट ही की ओर अग्रसर हो रहा था। धीरे-धीरे वह घाट के पास आ गया। हवा के एक झोंके ने उसे तट से सटा दिया।

तट पर पुनवासी का शव इस प्रकार दक्षिण पैर कर सुलाया गया था कि लहरें उठ-उठ कर उसके पैरों से टकराती थीं। हवा

के एक झोंके ने मुरदे को इस तरह उलटा कि उसका सिर पुनवासी के पैरों से सट कर टिक गया ।

राय साहब के घर पर उत्सव चल रहा था । तारा को जब सुमन्त नहीं मिला और वह अपनी स्वीकारोक्ति जब समाचार पत्र में नहीं भेज सकी तब उसने विचार किया कि अतिथियों के सामने वह तथ्यका उद्घाटन करेगी और तब उसके पिता की परेशानी देखने लायक होगी । परन्तु ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता गया उसका यह ख्याल उतरता गया और अन्त में उसने निश्चय किया कि अभी मौन रहना ही ठीक है । जब अतिथियों के आने का समय हुआ तब उसे ख्याल पड़ा कि उनकी शुभकामनाओं का उत्तर देने के लिए भाषण भी करना पड़ेगा । उसने अपने भाषण के नोट्स की तैयारी की । जल्द दस पांच वाक्य घसीटकर चिट जेब में रख लिया ।

ठीक सात बजे जब उसने सजे-सजाये पण्डाल में प्रवेश किया तो अतिथियों ने उसे देख कर हर्ष-ध्वनि की । तारा लज्जा से लाल हो उठी, रायसाहब खुशी से गदगद हो उठे । उसकी दासी ने उसे चुपचाप मन्तू की चिट थमा दी । तारा ने उसे जेब में रख लिया । वाइस चान्सलर ने तारा की स्वास्थ्य कामना का जाम चढाया और संक्षिप्त सा भाषण करते हुए उसकी विद्या बुद्धि की खूब प्रशंसा की । वह जवाबी भाषण करने के लिए उठी । बोली—माननीय अतिथि गण, इस अवसर पर मैं क्या कहकर आपकी कृपा का बदला चुकाऊँ ।

मुँह भाषण कर रहा था । हाथ कोट की जेब में चिट टटोल कर निकाल रहा था और जब हाथ ने चिट खोलकर आँखों के सामने रख दिया तो आँखों ने स्वभावतः उसे पढ़ा । पढ़ते ही भाषण करता हुआ कंठ जैसे क्रन्दन कर उठा । तारा चिल्लाई—

प्रोफेसर पूर्णचन्द्र मर गये । मुझे जिस थीसिस पर डाक्टरेट मिली है उसका अक्षर-अक्षर उनका लिखा हुआ था । मैं जाती हूँ ।

तारा मंच से कूद कर भागी । अतिथिगण हक्के-बक्के एक दूसरे का मुँह देखते रह गये । रायसाहब क्रोध से दाँत पीसने लगे । किसी ने उसके रोकने की ओर ध्यान न दिया । वह झपटो हुई पण्डाल के बाहर आयी और जो पहली मोटर उसे दिखाई पड़ी उसी में बैठ और उसे स्टार्ट कर वह मसान की ओर चल पड़ी ।

सरपत की मशाल जलाये हुए रिक्सा चालकों का समूह चिता सजा लेने के बाद पुनवासी का शव उठाने आया । उनमें से एक दूर से ही बोला—अरे, एक लाश की जगह दो हो गयीं । समीप पहुँचने पर मशाल की हवा में बल खाती रोशनी नवागंतुक मुरदे के मुँह पर पड़ी । वह किसी नारी का मुरदा था । बदन फूल आया था । शायद डूब कर मरी थी । पुनवासी के एक साथी ने कहा—मर गयी, लेकिन मरने पर भी मरद के चरन का आसरा न छोड़, लगी ही रह गयी है । पुनवासी के एक पड़ोसी ने गौर से देखा और चिल्ला उठा—यह तो बुधिया है, पुनवासी दादा की घरवाली । घर से भाग गयी थी सो उनके चरन पर सिर रख कर अपराध की माफी मांगने आयी है ।

उसी समय ऊपर मोटर रुकने की आवाज आयी और तारा का कंठस्वर गूँज उठा—गुरुजी, गुरुजी । पागल की तरह दौड़ी हुई तारा किनारे पहुँची और पुनवासी की लाश के दूसरे चरण पर उसने अपना सिर रख दिया ।

सुमन्त ने अपनी धोती के छोर से अपने आँसू पोछे । स्वर्ग में भवभूति ने शायद एक बार फिर कहा—एको रसः करुण एव ।

४

चन्द्रा

मोरी बुधि लड़कइयाँ मैं का जानूँ राम

ढोल, करताल बजाते हुए
रामायण-प्रेमियों को मण्डली गा
रही थी—मोरी बुधि लड़कइयाँ मैं
का जानूँ राम ?

कंकन किकिनि नूपुर धुनि सुनि
कहत लखन सन राम हृदय गुनि
मानहु मदन दुन्दुभी दीन्हीं
मनसा बिस्व बिजय चह कीन्हीं
मैं का जानूँ राम

मोरी बुधि लड़कइयाँ मैं का जानूँ राम ।
तात जन दन्तनया यइ सोई
धनुष जग्य जेहि कारन होई
मैं का जानूँ राम

मोरी बुधि लड़कइयाँ मैं का जानूँ राम ।

चौकी के दोनों ओर चार-चार
रामायणी बैठे थे । बीच में मोटी-

मोटी रामायण की दो प्रतियाँ दोनों दलों के सामने रखी हुई थीं। एक दल पहले रामायण की चौपाई कहता था फिर दूसरा दल 'मैं का जानू राम' का ठेका देता था। फिर दूसरा दल चौपाई कहता था और पहला दल 'मैं का जानू राम' की टेक दोहराता था।

अपनी निरानन्द कोठरी में तीन दिनों से व्रत के नाम पर उपवास करती हुई सत्रह वर्षीया तरुणी चन्द्रा रामायण-गान में अपनी भूख भुलवाने का प्रयत्न कर रही थी। शनिवार को उसने एकादशी के नाम पर नहीं खाया, रविवार को सूर्य का व्रत रखने की घोषणा कर घर की इज्जत बचायी। आज सोमवार को प्रदोष का युगसिद्ध बहाना हाथ लग गया। उसकी दालान के सामने से गुजरती हुई उसकी पड़ोसिन महेश की मौसी ने चन्द्रा को चुपचाप पड़ी देखकर पूछा भी था—क्यों सुमन्त की बहू ! क्या आज भी चूल्हा न जलाओगो। चन्द्रा ने जबाब दिया—आज तो प्रदोष का वरत न है, मौसी।

अरे वरत होता है बूढ़ों के लिए कि तेरी जैसी दुधमुँहीं बच्चियों के लिए। इत्ता ज्यादा वरत मत रखा कर-सहानुभूतिपूर्ण सदुपदेश देकर मुस्कराती हुई महेश की मौसी अपनी कोठरी की ओर चली।

उत्तर तरफवाली दालान में अपनी कोठरी के सामने बैठी सावित्री की मां ने जो महेश की मौसी को चन्द्रा से बातें कर आते देखा तो चरखा चलाना बन्द कर दिया और आवाज दी—महेश की मौसी, तुम तो दिखाई ही नहीं पड़ती। एकी घर में रहकर सात-सात दिन बीत जावे हैं लेकिन तुम्हारा दरसन तक भी दुरलभ रहे है।

महेश की मौसी सावित्री की मां के पास जाकर बोली—

नहीं जीजी, तुम तो जानो हो कि गिरस्थी का जंजाल कैसा होवे है। आदमी की साँसत हो जाय है। वो जो ऊपर सुमन्त रहे हैं न उसी की जोरू तीन दिन से भूखी बैठी है, तो उसी से कह रही थी कि 'क्यों' भूखी बैठी है !

सावित्री की माँ ने आश्चर्य का अभिनय करते हुए कहा— मुझसे तो कोई कहता था कि परदेस में खसम कुसल से रहे इसके लिए बरत करती है। लोग तो कहे हैं कि छोरी बड़ी सती है। खसम से बहुत परेम रखे है।

अरत-बरत सब बहाना है जीजी, घर में भूँजी भाँग तक तो है नहीं। खाय भी तो क्या खाय। लेकिन परेम की बात सच्ची है। मेरी आँखों देखी है। पिछली बार सुमन्त आया रहा न तब की बात है। कोई छः महिन्ने हुए होंगे। पिछले माघ की बात है और यह असाढ़ है। खुद गिन लो, ६ महिन्ने हुए। उस दिन भी सास बहू कई दिन से चूल्हा बुझाये बैठी रहीं। मैंने बात ही बात में महेश के मौसा को यह बता दिया तो उन्होंने कहा कि वह जो आटा है न जिसमें राख गिर गयी थी वह उन दोनों को दे दो। किसी का भूखा रहना हमें अच्छा नहीं लगता। मैंने जीजी वह आटा और कई दिन दाल बीन कर उसका खुद्दी मैंने फेंकी नहीं थी सो वो दोनों उसे दे आयो। बहू तो 'नाहीं नाहीं' हो करती रही। कहती रही—यह क्या होगा महेश की मौसी, लेकिन उसको सास ने ले लिया। संयोग की बात देखो कि खाना बनाकर अपनी सास को खिलाकर जब वह खुद खाने जा रही थी उसी बखत सालभर पर परदेश से हाथ झुलाता सुमन्त आ गया। बेचारी ने अपना खाना उसे खिला दिया और चुपचाप भूखी रह गयी। जीजी, अपनी तो भगवान जी से यही पररथना रहती है कि ऐसा निखटू खसम सात अर

दुस्मन को भी कभी मत देना परभू ।—महेश की मौसी ने अपने दोनों हाथों की उँगलियों से अपने कानों को स्पर्श करते हुए कहा और अपनी आँखें आकाश की ओर उठा दीं ।

सावित्री की माँ ने कहा—उसका खसम निखटू काहे को है, महेस की मौसी । अच्छा खासा कमाऊ है । परदेस नोकरी करे है । हर महीने मनीआडर से रुपैया भेजे है । अब और क्या चाहिये ।

महेश की मौसी ने कहा—तुम्हारी बातें बड़ी अनोखी होय हैं जीजी । तुम्हें कुछ खबर भी है । अब वह नोकरी नहीं करे है, बेकार देस देस घूमा करे है । अबकी अपनी अम्मा और जोरू से भगड़ कर गया है न ?

सुमन्त अपनी माता और पत्नी से लड़कर घर से भाग गया है, यह घर के सभी किरायेदार जानते हैं परन्तु लड़ा क्यों यह कोई नहीं जानता । जानती है तो केवल सावित्री की माँ । वह जानती है कि धन के प्रभाव में आदमी दूसरों से लड़ता है, धन के अभाव में अपनों से हो । अतः उसने बात आगे न बढ़ायी । इतना ही कहकर चरखा चलाने लगी कि अपनी अपनी करनी अपने साथ है महेश की मौसी ! लेकिन छोरी सती है ।

और वह सती यदि विचार से ही कोई असती हो जा सकती हो तो, इस समय पूरी वेश्या हो रही थी । वह खिड़की में बैठी रमायणियों का रामायण गान सुनने के लिए एकत्र भीड़ में प्रत्येक तरुण, युवक और प्रौढ़ की ओर देखती थी और उसका मन करता था कि उतरकर वह उनमें से किसी एक का हाथ थाम ले और कहे कि मुझे दो रोटी दो और जहाँ चाहो वहाँ ले चलो ।

रामायणियों की मण्डली बालकाण्ड से किसी की फर्माइश पर उत्तरकाण्ड पहुँच गयी थी । ऊपर खिड़की में एक तरुणी को बैठी

देख रामायण के तरुण श्रोता गए ऊँट की तरह गर्दन उठाये उसी ओर देख रहे थे । वृद्धजन पहले तो अपने चतुर्दिक चौकन्ने भाव से देख लेते थे और जब देखते थे कि उन्हें कोई नहीं देखता है तब एक उड़ती निगाह ऊपर खिड़की पर फेंक देते थे । जवान उठ उठ कर बैठने के लिए वैसी जगह तजबीज रहे थे जहाँ से खिड़की को ओर मजे में देखा जा सके । रामायणी गाये जा रहे थे:--

नारि बिबस नर सकल गोसाईं
नाचहिं नर मरकट की नाई
मैं का जानूँ राम ?

मोरी बुधि लड़कइयां मैं का जानूँ राम ।

चन्द्रा बैठी न रह सकी । वह उठी । ठीक उसी समय नगर की कुप्रसिद्ध प्रौढा बाड़ी-वाली सोने रूपे के विविध अलंकारों से सजी बजी वहाँ आई । उसके पैरों की भांभन और पाजेब की रुनभुन ध्वनि ककुनो के दानों की तरह चारो ओर बिखर गयी और श्रोताओं के कान कबूतर बनकर उसे चुगने लगे । निराभरणा और लुधा से पीड़िता चन्द्रा ने यह दृश्य देखा और अपनी शत-च्छिन्ना अत्यन्त मैली धोती उतार अपेक्षाकृत कम फटी और कम मैली एक दूसरी धोती पहन ली । नीचे गली में रामायण-गायकों ने तान लड़ाई:--

गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी ।
भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥
सौभागिनी विभूषन-हीना ।
विधबन्ध के सिंगार नवीना ॥
मैं का जानूँ राम ?

मोरी बुधि लड़कइयां मैं का जानूँ राम ।

अपनी एक मात्र शोभा-सम्पत्ति अपने आजानु-लम्बित

हल्ले सूखे केश पाश को समेट कर चन्द्रा चोटी बाँध ली और फिर गली में उतरने के लिए लड़खड़ाते पैरों से वह कोठरी के बाहर निकलने लगी। त्यों ही उसकी दृष्टि सामने दीवार पर टँगे अपने प्रति सुमन्त के चित्रपर सहसा पड़ी। वह क्षण भर के लिए ठिठक रही।

रामायणियों की मंडली नीचे गली में गा रही थी—

अबला कच भूखन भूरि छुधा

धनहीन दुखी ममता बहुधा

मैं का जानूँ राम ?

मोरि बुधि लड़कइयाँ मैं का जानूँ राम

उसी समय मनियाँ धोबिन कपड़ों की गठरी सर पर रखे तीन मंजिल ऊपर हाँफती हुई चन्द्रा के पास आई।

मनियाँ धोबिन अन्तः सत्वा है। इसलिए थोड़ा ही परिश्रम करने पर हाँफ उठती है, थक जाती है। उसने आते ही चन्द्रा को खड़ा देखकर कहा—कहीं की तैयारी है क्या बहू जी, ऐसे सज बजकर क्या ससुराल जा रही हो।

और चन्द्रा सन्न रह गयी। लज्जा से उसका मन मरोड़ उठा। वह धम से जमीन पर बैठ गयी और मनियाँ से बोली—कहीं नहीं जा रही हूँ मन्नी। जाऊँगी कहाँ अपनी किस्मत को बैठी रो रही हूँ।

मनियाँ ने भी जमीन पर गठरी रखकर और उस गठरी पर स्वयं बैठती हुई कहा—बाबू की कोई खबर अभी तक नहीं मिली क्या बहू जी !

मनियाँ के प्रश्न के उत्तर में चन्द्रा ने उसकी ओर इस प्रकार देखा कि मनियाँ अपने प्रश्न का पूरा-पूरा जवाब पा गयी। दूसरा प्रश्न करने की हिम्मत न पड़ी।

गोधूलि के धूमिल प्रकाश में दो स्त्रियाँ आमने-सामने बैठी परस्पर एक दूसरे को देख रही हैं। चन्द्रा—भोली, भाली चन्द्रा मनियां धोबिन के हृदय की सुन्दरता पर मुग्ध हो रही है और मनियां चन्द्रा के लम्बे रुखे केश, गोरे परन्तु सूखे हुए चेहरे, उसके सुन्दर परन्तु भूखे शरीर की तपस्वी शोभा निहार रही है और मन ही मन सौ-सौ जान से उसपर निसार हुई जा रही है। रामायणियों की मण्डली गली में व्यर्थ ही गला फाड़-फाड़ कर गा रही है—

नारि न मोह नारि के रूपा
पन्नगारि यह नीति अनूपा
मैं का जानूँ राम

मोरो बुधि लड़कइयाँ मैं का जानूँ राम !

आखिर मनियाँ बड़े धीमे स्वर से, इतने धीमे स्वर से बोली जैसे डर रही हो कि कहीं अपनी आवाज वह स्वयं ही न सुन ले—कै दिन चूल्हा जले हुआ बहूजी !

और किसी ने यही प्रश्न किया होता तो या तो चन्द्रा उत्तर ही न देती और उत्तर देती भी तो न जाने क्या-क्या मूठ सच बोल जाती परन्तु मनियां की सहानुभूति से मुग्ध उसने सच्ची बात बता दी—आज चौथा दिन है, मन्नी !

ऐसे कितने दिन चलेगा—मन्नी ने पूछा।

चन्द्रा ने कोई जवाब न दिया। उसकी ओर से मानो रामयणियों ने उत्तर दिया—मैं का जानूँ राम !

मन्नी ने पुनः कहा—बहूजी, तुम तो पहले बड़ी-बड़ी अच्छी-अच्छी गुड़िया बनाती थीं।

चन्द्रा ने सिर हिलाकर हुँकारी भरी और कहा—धर में पहनने ही के लिए चिथड़े नहीं रह गये हैं, गुड़िया काहे से बनाऊँ ?

—मैं तुम्हें फटे पुराने लेकिन धुले कपड़े दे जाया करूंगी तुम गुड़िया बनाओ बहूजी, मैं ले जाकर बाजार में बेच आया करूंगी। तुम्हें घर बैठे पैसा मिल जायगा।

चन्द्रा ने हाथ बढ़ा कर मन्नी के पैर पकड़ लिये। पैर छुड़ाती हुई गहरी विरक्ति के साथ मन्नी ने कहा—छोड़ो-छोड़ो क्यों नरक में ढकेलती हो बहूजी !

चन्द्रा ने मन्नी के पैरों पर से अपना हाथ हटा लिये और आँसू भरी आँखों से मन्नी की ओर देखती रह गयी। मन्नी ने उठ कर कपड़े की गठरी उठाते हुए कहा—तो वस यही तै रहा बहूजी, मैं कल कपड़े दे जाऊंगी।

चन्द्रा ने कहा—हम गरीब आदमी हैं मन्नी, तुम्हारे इस उपकार का बदला नहीं दे सकते। इसका बदला तुम्हें भगवान देगा।

—तुम्हारा आसिरवाद मेरे सिर माथे बहू जी, अब चलती हूँ लेकिन तुम जैसी गुनवती बहू से बाबूजी इतने पढ़े लिखे होकर भी क्यों चिढ़ते हैं, बता सकती हो।

चन्द्रा को सचमुच नहीं मालूम था कि पुस्तकीय प्रेम लालसा रखने वाला सुमन्त उसके हार्दिक प्रेम का परिचय ही नहीं रखता। अतः उसने उत्तर न दिया। उसकी ओर से पुनः उत्तर दिया रामायणियों ने ही जिनका समवेत स्वर हवा में गूँज रहा था—

मोरी बुधि लड़कइयाँ मैं का जानूं राम ?

जकने रे मंगिया में नडले रेधुरका

चन्द्रा के सामने गुड़ियों का
अम्बार लगा हुआ है। उसके कुशल
हाथों से प्राणवान् गुड्डे ऐसे जान
पड़ते हैं जैसे अभी-अभी बोल उठेंगे।
चन्द्रा गुड़ियों की चादर में सितारे
टांकती जाती है और कोने में पड़ी
हुई अपनी बूढ़ी सास की ओर देखती
जाती है।

उसकी सास ने अबकी बार
सचमुच खाट पकड़ लिया है। वह
जब भी खाट पकड़ती थी तभी उसे
विश्वास हो जाता था कि अब न

उठूंगी परन्तु इस बार तो चन्द्रा को भी विश्वास हो गया है कि इस यात्रा में अम्मा जी की रक्षा नहीं हो सकती ।

सत्रह साल की उम्र कोई उम्र नहीं होती परन्तु इसी उम्र में बेचारी चन्द्रा को अपना सारा पुरुषार्थ प्रकट करना पड़ रहा है । उसका पति सुभन्त गत आठ महीनों से निरुद्देश है । कहां है, क्या कर रहा है, कोई पता नहीं ।

बुढ़िया की सांस चल रही है । वह दमे की पुरानी रोगिणी है । उसका दमा उभड़ आया है । उसने इशारे से पानी मांगा । चन्द्रा ने उठ कर सास को पानी पिलाया । सास ने वहीं बैठ जाने का इशारा किया । चन्द्रा बैठ गयी । उसकी सास उससे धीरे-धीरे कहने लगी - अबकी मैं न बचूंगी बहू ! क्या बताऊँ, बड़ी जातना हो रही है । मर जाऊँ तो मानो जी जाऊँ । लेकिन मरते भी नहीं बन रहा है । डरती हूँ कि तू अकेली पड़ जायगी तो तेरी क्या दशा होगी ?

—अम्मा, आप मायाजाल की चिन्ता छोड़ कर राम-राम करो । जो राम जी करेंगे वही होगा । वही सबके रक्षक हैं ।

चन्द्रा ने अपनी सास को सान्त्वना दी परन्तु उसी समय छत पर गुड़ी उड़ाते हुए सुरेश चिल्लाया—गुड़ी भक्काटे । नरेश ने तुक जोड़ते हुए आवाज लगायी—हम तुम्हारे चाचे, और ठीक उसी समय एक छोटी सी कंकड़ी चन्द्रा के सिर पर आ गिरा । चन्द्रा ने सिर उठा कर देखा कि नरेश सामने छत पर खड़ा मुन्करा रहा है । कंकड़ी उसी ने फेंकी है । जब चन्द्रा ने उसकी ओर देखा तो उसने दाहिना हाथ अपनी छाती पर रखते हुए बायें हाथ से उसे अपने पास आने के लिए इशारा किया ।

चन्द्रा ने तत्काल सोच लिया कि केवल रामजी इस घर में उसकी रक्षा न कर सकेंगे । अभी तक इस घर में अकेले नरेश

ही आबारा मिजाज था, अब उसकी मंडली में सुरेश और महेश भी शामिल हो गये हैं ! जैसे हो बैस्से बूढ़ी को बचाना होगा, उसकी रक्षा करनी पड़ेगी; तभी अपनी रक्षा हो सकेगी ।

परन्तु बुढ़िया की रक्षा की जाय तो कैसे ? यदि समुचित चिकित्सा की जा सके तो शायद बूढ़ी बच जाय ।

चन्द्रा के हृदय की हलचल से अनभिज्ञ उसको सास कहती जा रही थी—बहू, मैं जो कुछ कह रही हूँ उसे ध्यान से सुनो । शायद फिर न बोल पाऊँ । बहू आज तक तुमसे मैंने नहीं कहा लेकिन आज कहती हूँ कि मन्तू से मुझे बड़ी निराशा हुई है । मैं समझती थी कि मेरा मन्तू पढ़ लिख कर चार पैसे पैदा करेगा । मेरा दुख दलदल दूर हो जायगा । लेकिन कुछ न हुआ ।

बुढ़िया ने रुककर दम लिया । चन्द्रा ने श्वेत कृष्ण कुछ न कहा । बुढ़िया फिर बोली—बहू ! बुरा न मानना । इसमें थोड़ा दोस तुम्हारा भी है । सुमन्त की यह दसा तुम्हारे आने के बाद ही हुई है । मैं आज तक यह भेद नहीं समझती थी । लेकिन अन्त समय में भगवान ने मुझे दिव्य दृष्टि दे दी है । मेरे सामने इस बखत सब कुछ निर्मल जल की तरह साफ हो गया है । तुमसे उसकी आशा पूरी नहीं हुई बेटी ।

चन्द्रा कलेजे पर पत्थर-सा रखे अपनी आलोचना सुनती रही । बुढ़िया कहती गयी—

बहू, मेरा सुमन्त सभी इन्तहानों में अपने दरजे में बराबर अक्वल आता रहा । बिरादरी की औरतें मेरे सुमन्त की बाह वाही सुनकर मुझसे डाह करने लगी थीं । सुमन्त को जो देखता था, उसकी बात जो सुनता था वह कहता था कि यह लड़का आगे चलकर लाखों में एक निकलेगा । मगर बहू तुमने सब चौपट कर दिया ।

बेजबान बालिका यह भी नहीं पूछ सकी कि अम्मा मैंने क्या किया है। लेकिन बूढ़ी ने कृपापूर्वक उसे उसका अपराध बता दिया। उसने कहा—तुम उसको सन्तुष्ट नहीं कर सकीं। कहते हैं सी आती है...

और बुढ़िया सचमुच हंसने लगी। चन्द्रा ने अपनी सास को हँसते कभी नहीं देखा था। तीन वर्ष उसे व्याह कर आये हुआ लेकिन उसने बुढ़िया को सदैव एक प्रकार के गम में ही डूबी पाया था। वह नहीं जानती थी कि बुढ़िया हंसना भी जानती है। वह बूढ़ी की हंसी से डर सी गयी। उसे सन्देह हुआ कि बुढ़िया अपने होश में नहीं है। उसने भयभीत कंठ से कहा—अम्मा।

बुढ़िया ने वैसे ही हंसते हुए उत्तर दिया—डरती है क्या रे पगली ! मैं बेहोश नहीं हूँ। सुन, क्या कह रही थी। हां मेरा सुमन्त बचपन में बड़ा तमासा करता था। घर बाहर कहीं भी जहां जिस लड़की को सुन्दर देखता था उसी से कहता था कि मैं ब्याह करूँगा। तूही बता यह क्या हंसने की बात नहीं है ? मेरे कहने का मतलब यह कि वह बचपन से ही सुन्दर बहू चाहता था। जब वह पढ़ने लगा तो कहने लगा कि मैं उसी से ब्याह करूँगा जो खूबसूरत हो और खूब पढ़ी लिखी हो। वह बी० ए० पास कर कलकत्ते पढ़ने गया। इधर सुमन्त के बाप ने तेरे बाप से तेरी और सुमन्त की शादी की बात पक्की कर ली। सुमन्त कलकत्ते से आया, तुझे ब्याह कर चला गया। उसी बखत उसने कहा था कि यह कहाँ की मूरख लड़की मेरे गले तूने मढ़ दी मां और तभी से उसका सुभाव बदलने लगा बहू। मूरख तो मैं भी हूँ लेकिन इतना जरूर जानती हूँ कि जैसे भूखा तन बोझा नहीं ढो सकता वैसे ही भूखा मन संसार में कुछ नहीं कर सकता।

बोलते-बोलते बूढ़ी हांफ उठी और बोलने की थकावट के कारण शिथिल हो पड़ी। दरवाजे पर किसी के खांसने को आवाज आयी। चंद्रा ने सिर उठाकर देखा कि छत पर खड़ा नरेश खुली खिड़की के जँगले से उसकी ओर एकटक निहार रहा है। चंद्रा ने पुनः निश्चय किया कि जैसे भी हो बूढ़ी की प्राण-रक्षा करनी ही पड़ेगी। घर है किराये का, पड़ोसी स्वार्थी और बदमाश हैं। इस घर में वह अकेली न रह सकेगी। परन्तु बूढ़ी की चिकित्सा के लिए पैसा चाहिये। चौदह पन्द्रह दिन हो गये, मनियां भी नहीं आयी।

मनियां की याद आते ही चन्द्रा ने सोचा कि शायद उसे लड्डका हुआ हो। बस यही बात है जो मनियां नहीं आ सकी। उसका रोम-रोम मनियां का कृतज्ञ है। उसने धोबिन होकर भी देवियों जैसी दया दिखायी है। चन्द्रा उससे प्राप्त चीथड़ों से गुड़िया और गुड्डे बनाती है। मनियां उन्हें बाजार में बेच आती है। पिछली खेप की बिक्री का पैसा भी वह चन्द्रा को नहीं दे पायी है। दे तो सात-आठ रुपये से कम न मिलें। फिर वैद्यजी भी बुलाये जा सकें और बूढ़ी की चिकित्सा शुरू की जा सके।

चन्द्रा ने आज वह काम करने के लिये कमर कस ली जो उसने इस सत्रह साल के जीवन में कभी न किया था। उसने देखा कि बूढ़ी सो गयी है। उसे सोयी छोड़ वह चुप-चाप उठी, गुड़ियों को पिटारी में भर लिया और चादर ओढ़ वह पिटारी सिर पर रख कर घर से बाहर निकल पड़ी।

वह जानती थी कि मनियां का घर मील भर दूर है। रात हो गयी है। चन्द्रा का कलेजा धक-धक धड़क रहा था और वह मुख्य सड़क पकड़े बराबर बढ़ी जा रही थी।

मनियां के घर पहुँचकर उसने देखा कि उसका खयाल ठीक

है। मनियाँ के बच्चे की आज बरही है। धोबियों की भीड़ भोज भात में शामिल होने के लिए लगी हुई है। उसने दूर से ही देखा कि धोबियों की भीड़ में पियरी पहने मनियाँ अपने बच्चे को अपनी पालथी पर रखे बैठी है। चन्द्रा को देखते ही मनियाँ अत्यन्त चकित हुई। बोली—अरे बहूजो आप ! और ठठकर चन्द्रा को साथ लिये अपनी कोठरी में घुस गयी। बोली—बहू जी, आपका पाँच रुपया मेरे पास है। यह लीजिये। और यह दो रुपया मुझ गरीब की भेंट है।

अपने आँचल से चन्द्रा का पैर छूती हुई मनियाँ ने उसके चरणों पर दो रुपये रख दिये। जिस समय चन्द्रा अपनी पिटारी लिये हुई घर वापस आने के लिए मनियाँ के यहाँ से चली तो खाना खाने के बाद कमर और पैरों में घुँघरू बाँधे हुए दो तरुण धोबी मटक-मटक कर हुड़क, डुंगी और मजीरे के ताल पर गा रहे थे—

जवने रे मँगिया में नउले सेंधुरवा

कि तवने मँगिया

हमसे बोझवा ढोआवऽले तवने मँगिया ।

चन्द्रा को अपने सिर पर लदी हुई पिटारी का बोझ कुछ अधिक भारी मालूम पड़ने लगा ।

रेलिया सकतिया फिया को लिये जाय

पुरातत्व का निष्ठावान् विद्यार्थी
सुमन्त जब उस छोटे से देहाती स्टे-
शन पर उतरा तो सहसा उसे हँसी आ
गयी । हँसी आने की बात भी थी ।
लाल टीन से बनी हुई और लकड़ी के
दर्वाजे वाली मुरगी के टापे जैसी
उस इमारत का नाम था-बुलन्द
दर्वाजा स्टेशन । बिलकुल आँख के
अन्धे नाम नयन सुखवाली स्थिति
थी और ऐसी स्थिति काफी हास्यो-
पादक होती है ।

सुमन्त ने वैसे ही हँसते हुए अपनी दृष्टि चारों ओर घुमायी और स्टेशन के चतुर्दिक फैले हुए खण्डहरों को देखा। उसे एक ओर किसी विशाल सिंह-द्वार का एक टूटा फूटा अंश दिख-
लायी पड़ा और उसके मन ने तुरन्त कह दिया कि अपनो बुलन्दी के दिनों में यह दर्वाजा अवश्य ही बुलन्द रहा होगा। इसी समय गाड़ी ने सीटी दी और आगे बढ़ी। सुमन्त का ध्यान टूटा परन्तु तत्काल ही टूटे दर्वाजे के पीछे से किसी नारी का करुणा-
पूरित कंठ-स्वर सुनायी पड़ा—रेलिया सबतिया पिया को लिये जाय।

गाड़ी की घड़घड़ाहट समाप्त होते ही वह स्वर और भी स्पष्ट हो उठा। स्टेशन मास्टर के कमरे से 'ट्रकको ट्रा ट्रा' की मन्द ध्वनि आ रही थी परन्तु उसे दबाकर 'रेलिया सबतिया पिया को लिये जाय' का करुण स्वर वायु में गूँज रहा था और उसी स्वर के साथ किसी का कर्कश कंठ निनाद नीरवता को कुचल कुचल कर उछल रहा था—चुप-चुप ! कब तक पीटेगी रेलिया सबतिया के नाम। कब तक ? उस करुण स्वर के साथ उस कर्कश नाद को सुनकर ऐसा जान पड़ने लगा जैसे वांसुरी के साथ नगाड़ा बजाया जा रहा हो।

आकाश निरभ्र और चमकीला था। खण्डहर के चारों ओर बिखरे वृक्षों और इश्क पेचा की लताओं के सिरे पर क्षितिज की सायंकालिक लालिमा की छाया पड़ रही थी। कर्कश कण्ठ के दबाव में आकर मधुर स्वर मौन हो गया। फलतः कर्कश कण्ठ को भी नीरवता की छाती फाड़ने का अवसर न रहा। अतः सुमन्त भी मेंहदी की भाँड़ी पार करता हुआ स्टेशन मास्टर के कमरे के सामने आ खड़ा हुआ।

अन्य देहाती स्टेशन मास्टरों की भाँति इस स्टेशन मास्टर

को भी बुकिंग क्लर्क, पारसल बाबू और टिकट कलक्टर तक का काम एक साथ करना पड़ता था अर्थात् गाड़ी आने के पूर्व टिकट बाँटना और गाड़ी आ जाने के बाद यात्रियों से टिकट लेने तक का काम उन्हीं के जिम्मे था। सुविधा इतनी ही थी कि दिन-रात के चौबीस घण्टों में कुल पाँच गाड़ियाँ इस स्टेशन से गुजरती थीं जिनमें एक्सप्रेस और डाक तो वहाँ रुकती ही नहीं थीं। रुकने वाली गाड़ियों में भी एक मालगाड़ी थी और दो साधारण पैसेंजर ट्रेन। इन सभी गाड़ियों के आने के पूर्व और जाने के बाद स्टेशन मास्टर को तार के यंत्र पर कुछ संकेत सूचनायें लेनी या देनी पड़ती थीं। इस समय भी स्टेशन मास्टर अपने कार्य में व्यस्त थे कि उन्हें आहट सी लगी कि कोई दरवाजे पर खड़ा है। उन्होंने सुमन्त को देखा और पहचान लिया कि यह वही युवक है जो अभी-अभी गाड़ी से उतरा है। स्टेशन पर केवल एक यात्री उतरते देख उससे टिकट लेने के लिए उन्होंने बाहर आने की कोई आवश्यकता न समझी थी।

अनुभव ने उन्हें बता दिया था कि 'डब्ल्यू० टी०' (टिकट विहीन) यात्री किसी सूने स्टेशन पर एकाकी रूप में स्टेशन मास्टर की आँखों के सामने ही नहीं उतरा करते, और फिर बुलन्द दरवाजा स्टेशन पर उतरने वाले यात्री केवल दो प्रकार के होते हैं। एक तो आस-पास के निवासी जो दो चार महीनों में इक्के-दुक्के शहर जाते और लौट आते थे। परन्तु दूसरी कोटि के यात्रियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रहती थी। बुलन्द दरवाजे के ऐतिहासिक महत्व से आकर्षित होकर वे इस धीरान में आते थे और दो-एक दिन खँडहरों और उनमें बनी कब्रों के ध्वंसावशेष का निरीक्षण कर लौट जाते थे। स्टेशन मास्टर की अभ्यस्त आँखों ने भांप लिया कि यह आगन्तुक भी पुरातत्व

प्रेमी प्राणी है। कुरते पर लोहा करने के बाद जैसे धुअट डाल दी आय वैसे ही उन्होंने अपने व्यस्त बदन पर हँसी की शिकन डालते हुए पूछा—कहिये ! खंडहर देखने आये हैं।

‘खंडहर देखने नहीं, इतिहास की हड्डियाँ देखने आया हूँ ! क्या कोई दिखाने वाला गाइड भी यहाँ मिल सकता है।’ सुमन्त ने स्टेशन मास्टर से पूछा। स्टेशन मास्टर ने उत्तर दिया—जी हाँ, पूरब की ओर वाले खंडहर में एक टूटा दर्वाजा है। उसी में चले जाइये। एक भोपड़ी में आपको एक बुढ़ा मिलेगा। वही यहाँ गाइड का काम करता है।

सुमन्त ने स्टेशन मास्टर को धन्यवाद दिया और वह खंडहर के टूटे दर्वाजे की ओर चल पड़ा। दर्वाजा पार करते ही उसने देखा कि भोपड़ी के बाहर सत्तर बहत्तर साल का एक मरियल-सा बूढ़ा आदमी टूटी मचिया पर बैठा हुआ है। उसने खारुएँ की अत्यन्त मैली तहमद बांध रखी है। साधुओं की अलफी जैसा ढीला-ढाला कुरता उसके बदन पर है। वह कुरता भी इतना अधिक मैला है कि सहसा पता नहीं चलता कि उसका वास्तविक रङ्ग क्या है। गले में अकीक का कण्ठा और हाथ में तसबीह है जिसके मनकों को उसकी अभ्यस्त अंगुलियाँ जल्दी जल्दी फेरे जा रही हैं। वृद्धता और दुर्बलता के कारण उसकी गर्दन घड़ी के खटके की तरह हिलती है और उसी के साथ हिलती हुई लम्बी सफेद दाढ़ी उसे श्रद्धा या आदर का पात्र न रहने देकर, हास्यरस का आलम्बन बनाये दे रही है। उसके केश जो जवानी में घुंघराले रहे होंगे, अब सुफेद होने के बाद मटियाले होकर सूखे सन के समान दिखायी पड़ रहे हैं। सुमन्त ने यह भी देखा कि बुढ़े के सामने जमीन पर एक नारी बैठी हुई है जिससे वह दबी जवान से डँट रहा

। सुमन्त को देखते ही बुड्डे ने नारी से कुछ कहा और हाथों से उसे हल्का सा धक्का दिया। नारी उठ कर भोपड़ी में चली गयी। बुड्डा भी उठ खड़ा हुआ। इतने में सुमन्त उसके पास पहुँच गया। बुड्डे ने अपनी झुकी कमर और भी झुकते हुए सुमन्त को सलाम किया और कहा—क्या हुआ यह तबारीखी खंडहर देखने आये हैं।

सुमन्त द्वारा स्वीकृति सूचक उत्तर मिलने पर बुड्डे ने पुनः सविनय कहा—‘तो हजूर इसी मचिया पर तशरीफ रखें। नमाज का वक्त हो चुका है। देर जरा भी न होगी, अभी-अभी खिदमत में हाजिर हुआ जाता हूँ’

जवाब में सुमन्त कुछ भी न कह पाया था कि बुड्डा एक दूसरी भोपड़ी में घुस गया। सुमन्त ने मचिया पर निगाह डाली परन्तु वह उसे ऐसी धिनौनी लगी कि वह उस पर न बैठकर एक कब्र के टूटे-फूटे चबूतरे पर जा बैठा और बुड्डे के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। विचार की तल्लीनता के कारण सहसा उसे प्रतीत हुआ कि वह किसी खंडहर में नहीं बल्कि किसी नबाब के शाही महल में है। बुलबुलों की चहक और फूलों की महक से जैसे सारा वातावरण बोझिल हो उठा है। कहीं दूर इसराज के तार झनझना रहे हैं। कहीं से किसी तरुणी के पायजेब की ध्वनि समीप आती जा रही है—छम, छम, छमाछम।

सुमन्त चौंक पड़ा। उसकी कल्पना जैसे भकभोर दी गई। उसका स्वप्न टूट गया। उसने देखा कि जिस स्त्री को ढकेल कर बुड्डे ने भोपड़ी में भेजा था, वह उसी की आंर चली आ रही है। उसके मैले कुचैले कपड़ों को देखकर सुमन्त की आँखें उसकी ओर से हटमा ही चाहती थीं कि उन्का रूप देखकर वहीं अटक कर रह गयीं।

नारी सुन्दरी ही नहीं, युवती भी थी। उसकी आँखें भी बड़ी-बड़ी और काली थीं परन्तु सर्वथा भावशून्य, खोयी-खोयी सी। शरीर का वर्ण भी असाधारण गौर था परन्तु विषाद की छाया से आवेष्टित, जैसे स्वच्छ शीशे पर धूल पड़ गयी हो। बदन एकहरा और कुछ लंबा था। वस्त्र के नाम पर था छोट का चूड़ीदार पाजामा, मलमल का कुरता जो घुटने के नीचे तक मूल रहा था और बूटेदार ओढ़नी तथा आभूषण के नाम पर नाक में पीतल की बुलाक, हाथ में काले काँच की चार-चूड़ियाँ और पैरों में गिलट के पाजेब बजाती हुई सुमन्त के सामने आ खड़ी हुई। सुमन्त की जिज्ञासा भरी आँखें युवती की आँखों से चार हुई और युवती ने पलकें झुकाते हुए अपना हाथ आगे बढ़ाया और कहा—बाबू जी, क्या इस खत पर पता लिख दोगे। सुमन्त ने देखा कि युवती के हाथ में उसके वस्त्रों की भाँति ही गन्दा एक लिफाफा है जो आटे की घोल से बन्द किया गया है। उसने पूछा—

‘इस पर किसका पता लिखना होगा।’

‘बस यही लिखना होगा बाबू जी कि जिला चौबीस परगना गाँव रिसड़ा में पहुँचकर मामूद मियाँ के चटकल में मुझे मिस्त्री को मिले। बस यही लिख दोजिये बाबू जी, ज़िन्दगी भर दुआयें दूंगी ?—नारी ने बड़ी आजिजी के साथ गिड़गिड़ाते हुए कहा।

‘मुझे मिस्त्री कौन हैं तुम्हारे !’ सुमन्त ने पूछा।

‘मेरे मियाँ का नाम है बाबू जी।’

नारी ने अभ्यासवश लजाते हुए कहा—‘दस बरस हुआ कमाने के लिए परदेश गये। जाने के हफ्ते भर बाद ही एक खत आया लेकिन उसके बाद फिर एक भी नहीं। बुढ़े से मैंने कितनी

बार कहा खत भेजने के लिए। लेकिन वह मुझे डाँट दिया करता है। यह बुढ़ा विलकुल शैतान है, बाबूजी, पूरा शैतान ! इसी ने नाकों दम कर दिया मेरे शौहर की और परदेश भगाकर ही दम लिया ! इससे होशियार रहियेगा ।’

‘तुम्हारा कौन है यह बुढ़ा ?’—सुमन्त ने पूछा। उत्तर में युवती कुछ कहने ही जा रही थी कि दूसरी भोपड़ी से बुढ़ा निकला और उसे देखते ही भागकर युवती अपनी भोपड़ी में घुस गयी। बुढ़े ने कहा—चलिए हुजूर, खँडहर की सैर करा लाऊँ ? हाँ, वह पगली आप से क्या कह रही थी ?

सुमन्त ने उत्तर दिया—एक चिट्ठी पर पता लिखने के लिए कह रही थी। लेकिन मुझे तो वह पागल नहीं लगी।

‘यही तो उसका पागलपन है, जनाब। चौबीस घण्टे उसे एक ही धुन रहती है, खत भेजने की। मैं बड़ा हो बदनसीब हूँ, मालिक !’ बूढ़े ने ठंडी साँस भर कर कहा।

बूढ़े की आह उसके दिल से निकली हुई कराह थी। सुमन्त ने अनायास उसके प्रति सहानुभूति अनुभव की और सान्त्वना के स्वर में कहा—‘यह सब वक्त का फेर है, बड़े मियाँ ! क्या करोगे ?’

‘वह तो है ही हुजूर ! सब वक्त का फेर है।’—बूढ़ा बोला। फेर न होता तो क्या आज ये दिन देखने पड़ते ! इसी जगह पर अब्बाजान की सराय थी और उसी जगह पर आज मुझ फकीर की भोपड़ी है। तवारीख से दिलचस्पी रखने वालों को संगमूसा से बनो हुई वह कब्र दिखाता हूँ लेकिन यह नहीं बताता कि इस कब्र में जो आराम फर्मा रहे हैं उन्हीं का मैं बदकिस्मत परपोता हूँ ! दीवानेआम की उजड़ी हुई इमारत

उन्हें दिखा देता हूँ लेकिन यह नहीं कहता कि यहाँ जो तख्त-मशीन होते थे वे मेरे ही पुरखे थे ।’

बुढ़े का दम फूल गया । उसने फिर लम्बी सांस भरी । सुमन्त की सहानुभूति और गाढ़ी हो चली थी । उसने पूछा— तो फिर आपकी हालत एकाएक इतनी पतली कैसे हो गयी ?

‘मोटी अक्लवाले इस बात को नहीं समझ सकते हुजूर, बड़ी बारीक बात है । अंग्रेज आये और उन्होंने हमें सूबे-दार से सराय का भठियारा बना दिया । वे रेल ले आये और उनकी रेल ने हमें भठियारे से भिखमंगा बना दिया ।’ बुढ़े ने कहा । ‘लेकिन रेल से तिजारत में कितना ज्यादा फायदा हुआ । सफर की तकलीफें कितनी घट गयीं’ ।

सुमन्त ने बुढ़े को रेल की उपयोगिता समझायी परंतु बुढ़ा यही कहता रहा कि सब ठीक है लेकिन मैं तो बर्बाद हो गया । सन् ५७ के गदर की बात सुनी है न ? उसी मौके पर अंग्रेजों ने हमसे हुकूमत छीन ली । तोप के गोलों से हमारा किला उन्होंने ढहा दिया । दादाजी को तोप के मुँह पर बाँधकर चड़ा दिया गया । हमारी समूची जागीर जप्त कर ली गयी । फिर भी खैरियत थी । इसी गाँव से होकर एक शाही सड़क जाती थी । मुसाफिर कसरत से आते थे । इसलिए गोलों की मार से बचे हुए कमरों को अब्बाजान ने सराय बना दिया । सराय चली और जोरों से चली । लेकिन उसी वक्त इधर से रेल लाइन निकाली जाने लगी । सराय के कुछ कमरे उसमें नष्ट गये । रेलगाड़ी चल पड़ने पर सड़क से सफर करने वालों का आना जाना बन्द हो गया । नतीजा यह हुआ कि मैंने भी सराय बन्द कर दी और अपने बेटे से कहा कि नूरे-नजर, अब्बाह का नाम लेकर कहीं परदेश निकल जा और चार पैसे

पैदा कर। और कोई लड़का होता हुआ तो वह घर में हाल की ब्याही नौजवान बीबी को छोड़कर हरगिज न जाता। लेकिन मेरा मुन्ने खौ ! उसने तनिक भी आनाकानी न की और चला गया कलकत्ते। दस बरस हो गये हुआ ! लेकिन बात जैसे आज की ही जान पड़ती है। यही वक्त था और यही बुलन्द दरवाजा स्टेशन। मेरा बेटा गाड़ी में बैठ गया। बाहर उसकी बहू मेरे साथ खड़ी आँसू की बूँदें टपका रही थी। लेकिन मेरे बेटे ने उसकी ओर आँख उठाकर भा न देखा और चल पड़ी गाड़ी ! हुआ, हुआ ! वह जैसे लोहे की दो पटरियों पर नहीं, हम दोनों की छाती पर से चली गयी। मैं थरथराकर प्लेट फार्म की कंकरीली जमीन पर बैठ गया लेकिन मुन्ने की बहू ! वह रेल के पीछे दौड़ पड़ी, चिल्लाती हुई—‘रेलिया सवतिया पिया को लिये जाय !’ वह पागल हो गयी मालिक, उसी दिन से पागल हो गयी। उधर मुन्ने ने किसी चटकल में नौकरी कर ली जहाँ मशीन में फँसकर वह घायल हुआ और बाद में मर गया। इधर उसकी बीबी की हालत यह है कि जब इधर से रेल गुजरती है, वह चिल्ला उठती है—‘रेलिया सवतिया पिया को लिये जाय !’

बुढ़े की आँखों से आँसू की धारा फूटकर उसकी दाढ़ी पर बहने लगी। सहसा स्टेशन पर घण्टा घनघनाया और एक डाक गाड़ी बिना रुके उस स्टेशन से निकल गयी और उसी वक्त मोपड़ी से निकल कर युवती भागती हुई गाड़ी के पीछे हाथ से इशारा करती हुई करुणा-पूरित स्वर में चिल्ला उठी—‘रेलिया सवतिया पिया को लिये जाय !’

जो तू जइहो राजा पुरब के देख्यो

कानों में पीतल के मोटे-मोटे
छल्ले पहने, बाएँ हाथ की कलाई में
तांबे का मोटा-सा कड़ा डाले, कल्ले-
ठल्ले के जवान कल्लू नट ने जमीन पर
सीधा बाँस सीधे खड़ा कर दिया और
अपना बदन तौल कर जो उछाल
मारी तो पहली ही उछाल में वह
बाँस के मध्यभाग पर पहुँच गया ।
फिर तो फुरती से बन्दर के बच्चे
की तरह चढ़ता हुआ पलक मारते
वह बाँस के सिरे पर दिखायी पड़ा ।
जमीन पर बैठी नटिन बराबर ढोल
पीटे जा रही थी । बाँस के सिरे
पर चढ़कर नट ने नटिन को
पुकारा—अरे कबुतरी ! अरे कबुतरी !

कबूतरी की तरह हो ग्रीवा भङ्ग करती हुई नटिन ने ढोल बजाना बन्द कर दिया और आँखें उठाकर ऊपर नट की ओर निहोरे से निहारा ।

दोनों की चार आँखें हुई और नटिन के पके जामुन के रङ्ग वाला वर्ण जरा विवर्ण हो गया । रस भरी आम की फाँक सी आँखों में एक झलक आशङ्का खेल गयी ।

नट की पुत्री और नट की बधू होने के कारण उसने अपने जन्म काल से ही अपने जाति के पुरुषों को सूली की नोंक पर जीविका कमाते देखा था, फांसी पाते और फालापानी जाते देखा था ।

फिर भी इस समय नट को विकट स्थिति में देख उसका कलेजा एक बार केले के पत्ते की तरह काँप उठा परन्तु तुरन्त ही बड़हर के दानों-सी सफेद दन्त पंक्ति चमकाती हुई कबूतरी ढोलक पर दो बार थाप मारकर बोली ।

—का हो परेवा ।

—अरे कबूतरी ! तोर परेवा पुरुब उड़ा जात है रे ।

—नाहीं परेवा, पुरुब जिन जायो ।

कबूतरी ने ढोलक थपथपा कर थाप मारी और फिर गाने लगी—

उत्तर जइयो, दक्खिन जइयो,

पच्छिम करियो पयान ।

जहर खाय या मारि कटारी,

तजिबै पतित परान ॥

जौ तूँ जइहो राजा पुरुब के देसवाँ.....

कबूतरी फिर ढोल पीटने लगी, नट ने कलैया मारी और बाँस के सिरे पर सिर के बल खड़ा हो गया ।

दर्शकों में बच्चे मारे खुशी के ताली पीट-पीट कर नाचने लगे । जवानों ने बाह-बाह किया । नट ने पुकारा—कबुतरी ! नटिन ने ढोलक पर थाप मारकर जवाब दिया—का हो परेबा ! बाँस के सिरे पर शीर्षासन करते हुए नट बोला—अरे कबुतरी हमें पुरुब जाये दे । बोल, पुरुब देस कइसन ?

नटिन ने पूर्ववत् ढोलक पर चोट लगायी...और पूर्ववत् गाया—

धानै धान सोनहरा दाना,
दानै दान कि सोन ।
अरे परेबा हम बनि जइबे,
जस पानी कऽ लोन ॥

जो तूँ जइहो राजा पुरुब के देसवाँ

नटिन ने पुनः ढोल बजायी । नट ने बाँस के सिरे पर पुनः पैंतरेबाजी की और इस बार वह बाँस पर तिरछे पेट के बल लेट रहा । बोला—कबुतरी !

कबुतरी ने ढोलक बजाकर जवाब दिया—का हो परेबा ! नट ने चिल्लाकर कहा—अरे कबुतरी ! पुरुब से दौरी भर-भर सोना ले आइब, तोर चोंच सोनवनै मढ़ाइब ! हमें पुरुब जाये दे ।

कबुतरी ने ढोलक में ध्वनि पैदा की—ढम्मक ढम्म, ढम्मक ढम्म और फिर बोली—

का करबै रे लेके सोना
काटै रे जे कान ।
अरे परेबा तोर कबुतरी
तोहई पर कुरबान
जो तूँ जइहो राजा पुरुब के देसवाँ ॥

नीचे फिर ढोलक बजने लगी—ढमाढम, ढमाढम । बाँस के सिरे पर नाचते हुए नट जैसे लोग पलंग पर सोते हैं उसी प्रकार बाँस की नोक पर आकाश की ओर मुँह किये लेट गया । लेटे लेटे बोला—अरे कबुतरी !

कबुतरी ने ढोल बजाकर कहा—का हो परेवा ।

नट बोला—अरे हमके तिलोक देखात है रे !

कबुतरी जल्दी-जल्दी ढोलक पीटते हुए कहने लगी—भैया हो, बाबू हो, पेट की खातिर हमार परेवा सूली चढ़ा है । भैया हो, बाबू हो ! परेवा तिलोक देख रहा है । जे के जो पूछै के होय पूछ ले । सोना दे, चाँदी दे । घर कऽपूछ ले, घाट कऽ पूछ ले, राज कऽपूछ ले, पाट कऽपूछ ले । भैया हो, बाबू हो !

बांभन हाल बेद कऽ पूछै

भाव ताव सब बनियाँ ।

ऊ परदेशी मुहाँ न खोलै

जे घर बारी धनियाँ ॥

भैया हो, बाबू हो...आओ आओ । पूछो, पूछो । पूछो । नटिन जोर जोर से ढोल पीटने लगी ।

एक धोबी भीड़ में से निकल कर सामने आया । एक फूटा पैसा नटिन के सामने फेंक कर बोला—मोर गदहा हेराय गवा है । नट से पूछ के बताव कि कहाँ मिलि है ।

नटिन ने एकबार ढोल पीटा । ऊपर से नट बोला—कबुतरी रे !

नटिन ने कहा—अरे परेवा, धोबी महतो कऽ गदहवा हेराय गवा है । तिलोक में देख के बताव कहाँ है । नट ने वहीं से पुनः आवाज दी—कबुतरी रे बताय दे ।

गाड़ी जहाँ तहै गाड़ी कऽ
मिली अगाड़ी पहिया ।
तोर गदहवा धोबी तह वाँ
जहवाँ तोर गदहिया ॥

समूची दर्शक मण्डली ठठाकर हँस पड़ी । सभी समझ गये कि धोबी नट से मिला हुआ था और तमाशे का मजा बढ़ाने के लिए आगे आ गया था ।

नटिन ढोल बजाने लगी । परन्तु फिर कोई कुछ पूछने नहीं आया । नट बाँस के सिरे पर से चिल्लाया—अरे कबुतरी !

नटिन ने कहा—हाँ परेवा !

नट ने कहा—हियों से दाना पानी उठ गवाऽ रे । हम पुरुब जाब ।

नट ने पूर्व दिशा की प्रशंसा करनी प्रारम्भ की ।

‘पूर्व दिशा दिशाओं की रानी है । सूर्य उसकी कोख से पैदा होता है । चन्द्रमा उसकी गोद में खेलता है । पूरब में धूप है, प्रकाश है, पूर्व जाऊँगा ।’

कबुतरी पहले तो बड़ा अनुनय विनय करती है कि परेवा पूरब न जाय । वह समझाती है कि जिस पूर्व की हवा लगने से शरीर फूल जाता है, उसमें पीड़ा होने लगती है, वहाँ के आदमी न जाने कैसे होंगे ? जब परेवा इस पर भी नहीं मानता तो कबुतरी उससे कलह आरम्भ कर देती है । कहती है पूरब कमाने जाने की बात मूठ है । असल में पूर्व की किसी कबुतरी ने परेवा का मन मोह लिया है । परेवा कसम पर कसम खाता है परन्तु कबुतरी उसकी किसी बात का विश्वास करने के लिये तैयार नहीं होती । उसकी सारी चालाकी प्रभावहीन प्रमादित

होती है। अन्त में कबूतरी कबूतर से वचन बँधवाती है कि वह कबूतरी के अन्तकाल के अवसर पर अवश्य आ जायगा।

परेवा और कबूतरी के बिछोह की वार्ता और भी हृदय-द्रावक हुई जिसकी समाप्ति पर कबूतरी ने इतनी जोर से ढोलक बजाई कि लोगों को सन्देह होने लगा कि कहीं ढोल फूट न जाय। ढोलक की आवाज भन्द होते ही दर्शकों के मुँह से एक साथ आश्चर्य ध्वनि निकली। बाँस वैसे ही खड़ा था परन्तु बाँस पर से नट गायब हो गया था। नटिन ने पुनः ढोलक बजाना और गाना आरम्भ किया—

‘परेवा उड़ा आ रहा है, उड़ा आ रहा है। पूरब के सूरज की किरन उसके पंखों को झुलसाये दे रही हैं परन्तु परेवा उड़ा आ रहा है, उड़ा आ रहा है। पूरब की बदनाम हवा आँधी बन गई है, उसके झोंको से परेवा के डैने टूटे जा रहे हैं, परन्तु परेवा उड़ा आ रहा है। कारण उसने कबूतरी की पुकार सुन ली है। कबूतरी यही कह कर तो रोयी थी कि आकाश से ओले गिर रहे हैं। हे परेवा ! आकर अपने पंखों की छाया करो ! कबूतरी की करुण पुकार पर परेवा आ रहा है, आ रहा है। कबूतरी के पंखों की फड़-फड़ाहट शिथिल पड़ती जा रही है। आकाश में उसे धब्बा-सा दिखाई पड़ता है ! परेवा आ रहा है, आ रहा है। परेवा आ गया, परन्तु कबूतरी की आँखें बंद हो गयी हैं, वह कैसे देखे। परेवा आ गया, परन्तु कबूतरी के प्राण चले गये। वह कैसे कूज कर परेवा का स्वागत करे।’

नटिन ने सहसा ढोल बजाना बंद कर दिया। लोगों ने देखा कि बाँस के सिरे से देखते-देखते गायब हो जानेवाला नट नटिनी की बगल में खड़ा है।

नट-नाटक समाप्त हो गया। तमाशबीनों में अनेक परदेशी

उस दिन घर जा रहे थे । अतः स्टेशन पर गृहाभिमुख प्रवासियों की भीड़ लगी थी । एक गिरहकट ने एक व्यक्ति की जेब से उसकी थैली निकाल ली । उसने थैली खोल कर देखी । उसमें एक टिकट कुछ फुटकल रुपये और सोने की एक अंगूठी थी । अंगूठी पर उसके मालिक का नाम खुदा था । गिरहकट ने अंगूठी पहन ली । थैली जेब में रख ली ।

उसी समय एक यात्री गार्ड से शिकायत कर रहा था—

साहब, मैंने थर्ड क्लास का टिकट खरीदा था । उसका नम्बर यह नोट कर लिया था । वह मेरी अंगूठी के साथ गायब है ।

गार्ड ने पूछा—आपका नाम ?

उत्तर मिला—सुमन्त ।

नट ने गिरहकट को एकान्त में कुछ देखते देखा । वह उसकी ओर बढ़ा । गिरहकट ने नट को जो आते देखा तो भाग चला । चाहा कि भाग कर पटरी के पार चला जाय । ठीक उसी समय पूरब से गाड़ी आयी । नटिन नट के पीछे दौड़ रही थी । नट गिरहकट के पास पहुँचा । परन्तु गिर कर रह गया । गिरहकट लाइन पार कर गया था और नट गाड़ी के नीचे दबकर क्षत-विक्षत हो गया था । उसके पीछे आनेवाली नटिन उसे चिढ़ाने के लिए अपने सधे स्वर में गाने ही जा रही थी कि जो तू जइहो राजा पुंख के देसवां, परन्तु उसकी बात उसके मुँह में ही रह गयी । उसने अपने को भी पहिये के नीचे डाल दिया ।

सुमन्त को नटिन के वदन पर अपनी पत्नी चन्द्रा के चेहरे की झलक दिखायी पड़ी और वह गार्ड के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही चटपट गृहाभिमुख गाड़ी में बैठ गया ।

धनि रे सैधुरका कऽ माग

यदि गुलाब के फूल से कोई
पूछे कि ऐसा चटकीला रूप रंग लेकर
तुम अनाथ से बन में खड़े रहते
हो, तुम्हारी रक्षा कौन करता है तो
फूल को यदि जबान हो तो वह कह
दे कि हमारी रक्षा उपवन का माली-
मेरा मालिक करता है ।

यदि भयावने जंगल के जानवर
से कोई पूछे कि तुम जंगल में सदैव
विचरा करते हो, वहाँ तुम्हारी रक्षा
कौन करता है तो जंगली पशु यदि
मनुष्य की भाषा पा जाय तो कह दें कि
हमारी रक्षा हमारा जंगल ही करता
है । परन्तु यदि कोई चंद्रा से पूछे
कि तुम पति-परित्यक्ता की रक्षा कौन
करता है तो वह मानवी होते हुए

भी और मानव भाषा बोल सकने की शक्ति रखते हुए भी मौन रखने के सिवा और क्या कर सकती है।

चंद्रा की जिंदगी पड़ोसी किरायेदारों के दो आवारा लड़कों नरेश और सुरेश ने तल्लख कर दी। अपने कमरे में जब वह सोकर उठती है तो देखती है कि फर्श पर अश्लील चित्र और चिट्ठियाँ पड़ी हुई हैं !

वह उन चित्रों और चिट्ठियों से ईधन का काम लेती है और उस ईधन में जो कसर रह जाती है, उसकी पूर्ति वह अपना कलेजा जलाकर कर देती है ! उसको अंधी सास कुछ नहीं देखती ! वह सचमुच अंधी हो चुकी है ! अतः कोठरी में उसकी उपस्थिति रहते भी नरेश और सुरेश वहाँ पहुँच जाते हैं ! बोलते तो कुछ नहीं, परन्तु भद्दे-भद्दे इशारे करते हैं ! बदनामी के भय से वह उनसे कुछ कह तो सकती नहीं ! परन्तु उसकी सास अंधी ही है, बहरी नहीं !

उस दिन तो सचमुच बात पराकाष्ठा पर पहुँच गयी ! चन्द्रा बैठी गुड़िया बना रही थी और उसकी सास प्रतिदिन की भाँति खाट पर सोई पड़ी थी ! सैहसा वह उठ बैठी और चन्द्रा से बोली—‘बहू ! सुमन्त आ गया क्या ?’

प्रायः साल भर से निरुद्देश्य अपने पुत्र सुमन्त का नाम लेते हुए, बूढ़ी का कंठ-स्वर आवश्यकता से अधिक कांप उठा !

चन्द्रा ने कहा—‘अम्मां, तुमने कोई सपना देखा है क्या?’

बुढ़िया मिनट भर वैसे ही चुप चाप बैठी रह गयी और फिर शिथिल होकर खाट पर गिरती हुई सी बोली—जब सच नहीं है तो सपना ही है न ?

बूढ़ी ने मिनट भर बाद पुनः कहा—बहू, मैंने सुमन्त की आवाज सुनी है ! तुम तो न जाने क्यों इस कोठरी का भी

लेटी हुई बुढ़िया फिर उठ कर बैठ गयी परन्तु बोली कुछ नहीं । देखते देखते चंद्रा की छोटी सी कोठरी पड़ोस के किराये दार नर-नारियों से भर गयी ।

सबके आगे महेश की मौसी, सुरेश की चाची और स्वयं नरेश की नानी । इन्हीं तीनों के ठीक पीछे-पीछे सावित्री की माँ आयी । तीन चार दिन से ज्वर पीड़ित रहने के कारण बेचारी इन तीनों से दो सीढ़ी पीछे रह गयी । फिर तो घर में ऐसा कोई न बचा जो वहाँ न आ पहुँचा हो । नरेश की कलाई में चंद्रा के दांत बेतरह चुभ गये थे । रक्त छलछला आया था । परन्तु नरेश ने तत्काल बड़े ही कला पूर्ण ढंग से अपना दुपट्टा हाथ में लपेट लिया था । सबके मुख पर एक ही प्रश्न था—क्या बात हुई कि नरेश इस तरह चीखा ।

चंद्रा को काटो तो खून नहीं । परन्तु नरेश बड़े ही शांत भाव से खड़ा रहा । जिस समय सभी अपने प्रश्न के उत्तर की उत्सुकतापूर्वक मुँह उठाये प्रतीक्षा कर रहे थे नरेश ने अपनी जेब से एक अखबार निकालते हुए कहा सुमन्त भइया मर गए अखबार में खबर छपी है । मैं यही कहने आया था लेकिन दुःख के मारे मुख से चीख निकल गयी । सभी ने उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखा, सभी ने सुमन्त की माँ को संवेदना और संहानुभूति की नजरों से देखा पर यह किसी ने न देखा कि चन्द्रा कब संज्ञा शून्य होकर जमीन पर पड़ गयी । दस-पाँच मिनट तक बैठे रहने के बाद वहाँ से सभी हट गये । उनके साथ नरेश को भी हट जाना पड़ा । कुछ प्रकृतिस्थ होते ही चन्द्रा ने कोठरी का दरवाजा भीतर से पुनः बंद कर लिया । उसकी सास काठ हुई बैठी थी । उसके सामने जाकर चन्द्रा पत्थर होकर बैठ गयी । कोठरी में दो हाड़-भाँस के प्राणी नहीं, दो

प्रतिमाएं थीं एक काठ की, एक पत्थर की। कब साँझ हुई कब रात हो गयी, इसका पता सम्भवतः दोनों में किसी को न चल सका। सहसा चन्द्रा को प्रतीत हुआ कि उसके कानों में सुमन्त की आवाज आयी। उसी समय दूर किसी थाने का घंटा बारह बार घहराया।

चन्द्रा ने मन ही मन कहा कि वे मुझे बुला रहे हैं। चलना चाहिये। उसने धीरे से उठ कर संदूक खोला। उसमें से एक धोती निकाली। तिपाई रखकर और उस पर खड़ी होकर उसने कड़ी में धोती को एक छोर बाँध दी। दूसरी छोर उसने अपनी गरदन में कसा। उस समय उसे पुनः प्रतीत हुआ कि सुमन्त कहीं दूर से पुकार रहा है—चन्द्रा...चन्द्रा . चं...द्र... अ...आ।.....

चन्द्रा ने गला कस लिया था। फिर भी वह चिल्लाकर बोली—ज्ञाण भर ठहरो और पैर से धक्का मारकर उसने तिपाई गिरा दी। मिनट भर बाद बूढ़ी ने सुना कि कोई कोठरी का दरवाजा फिर पीट रहा है। वह चिल्लायी। मैं अन्धी हूँ। मेरी बहू यार के साथ निकल गयी। दरवाजा कौन खोले ?

सुमन्त ज्ञाण भर के लिए सन्न रह गया और फिर सारी शक्ति लगा कर दरवाजे पर पदाघात किया। पुराना दरवाजा चरमरा कर टूट पड़ा। सुमन्त भीतर घुसा, सामने छत से चन्द्रा को लटकती देख धक्का सा रह गया। तुरत ही आगे बढ़ उसे गोद में उठा उसके गले का फन्दा खोल, उसे जमीन पर लिटा दिया। उसने देखा कि चन्द्रा का शरीर अभी गर्म है। नाड़ी टटोली। अत्यन्त क्षीण स्पन्दन..... !

चरमराकर द्वार टूटने की आवाज से आकृष्ट होकर पड़ोसी दूसरी बार उस कोठरी में घुस आये। सभी ने जमीन पर पड़ी हुई

चन्द्रा और छत से लटकती हुई धोती को देखा । सही बात समझते किसो को देर न लगी । परन्तु इस बार किसी ने पुलिस को सूचना देने की आवश्यकता न समझी । सुमन्त ने अवश्य यह आवश्यकता समझी कि चन्द्रा के श्वास संचालन का कृत्रिम उपाय किया जाय । वह घुटने टेककर बैठ गया और जीवन में प्रथम बार चन्द्रा के फेफड़े में हवा भरने के लिए एक नारी के चंद्रा के मुँह से मुँह लगा दिया ।

सभी सांस रोके यह दृश्य देख रहे थे । सावित्री मुँह फेरकर मुस्करायी । और—

नीचे ज्वर पीड़ित सावित्री की माँ बुखार की भोंक में बर्बाद रही थी—धनि रे सेंधुरवा कऽ भाग बलम मोर बे-तिया से लौटे ।

उस मकान का कोना-कोना जैसे उस क्षीण स्वर से क्षण भर के लिए गूँज उठा—

‘धनिरे सेंधुरवा कऽ भाग बलम मोर—

‘बे-तिया’—से लौटे ।’

